खण्ड - 'ख' (पद्य)

रघुवंश-महाकाव्यम्

(द्वितीयः सर्गः)

महाकवि कालिदास : एक संक्षिप्त परिचय

जीवन-वृत्त एवं जन्म-स्थान—महाकवि कालिदास के जीवन-वृत्त के विषय में कोई भी प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। उन्होंने अपने ग्रन्थों में, महाकवि बाण के तुल्य, अपने जीवन के विषय में कोई सामग्री नहीं दी है, अतः अन्तःसाक्ष्य का अभाव है। परवर्ती काव्यों, महाकाव्यों या नाटकों में भी कहीं कालिदास के जीवन के विषय में कोई उल्लेख नहीं है, अतः बहिःसाक्ष्य का भी प्रायः अभाव है। केवल कुछ किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, जिनके आधार पर कालिदास के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है।

कालिदास के जन्म-स्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। कश्मीर के विद्वान् उनको कश्मीरी सिद्ध करते हैं, बंगाल के विद्वान् बंगाली और उज्जैन के विद्वान् उज्जयिनी-निवासी। 'मेघदूत' में कालिदास ने उज्जयिनी के प्रति विशेष आग्रह और आदर-भाव प्रदर्शित किया है, इससे ज्ञात होता है कि वे उज्जयिनी के निवासी थे या अधिक समय तक उज्जयिनी में रहे। 'मेघदूत' में उज्जयिनी नगरी के सौन्दर्य, शिप्रा नदी और महाकाल के मन्दिर का विशेष वर्णन मिलता है। विद्वानों का कहना है कि ये राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों में से थे। विक्रमादित्य के निम्नलिखित नवरत्न कहे जाते हैं :

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेःसभायां रत्नानि वै वररुचिर्नवविक्रमस्य॥

इनके विषय में एक मत यह भी है कि ये उज्जयिनी के राजा भोज के सभासद थे। एक कथा के अनुसार उनका सम्बन्ध श्रीलङ्का के राजा कुमारदास (500 ई0) से बताया जाता है। इनके विषय में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं, किन्तु जो किंवदन्ती अधिक चल पड़ी है, उसके अनुसार पहले ये बड़े ही मूर्ख थे। एक बार किसी राजा की कन्या ने जिसका नाम विद्योत्तमा कहा जाता है, प्रतिज्ञा की कि जो विद्वान् शास्त्रार्थ में उसे हरा देगा उसी से वह अपना विवाह करेगी। उसने अनेक उद्भट विद्वानों को हराया जिससे पण्डित-समाज को अपमानित होना पड़ा, अतः उन्होंने एक ऐसा मूर्ख खोज निकाला जो उसी डाल को काट रहा था जिस पर वह बैठा था। उन्होंने उसे ले जाकर राजकुमारी के समक्ष प्रस्तुत किया और कहा कि आज पण्डित महाशय का मौन व्रत है, अतः ये संकेत द्वारा शास्त्रार्थ करेंगे। विद्योत्तमा ने इसे स्वीकार कर लिया। शास्त्रार्थ शुरू हुआ, राजकुमारी ने एक उँगली दिखायी। उसके उत्तर में मूर्ख ने दो उँगलियाँ दिखायीं। फिर राजकुमारी ने पाँच उँगलियाँ दिखायीं तो उस मूर्ख ने उत्तर में मुट्ठी दिखायी। उनके प्रश्नोत्तर का जो भी अर्थ रहा हो, किन्तु राजकुमारी ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली और उस मूर्ख पण्डित से उसका विवाह हो गया।

ऐसा कहा जाता है कि विवाह के बाद एक दिन मूर्ख कालिदास अशुद्ध शब्दों का उच्चारण कर गये, जिससे उनकी धर्मपत्नी ने मूर्ख कहकर उनका बड़ा अपमान किया। इस अपमान से पीड़ित होकर वे घर से बाहर निकल गये और अपना प्राण त्यागने के लिए सरस्वती कुण्ड में कूद पड़े, किन्तु इनकी मृत्यु नहीं हुई। उन्होंने काली देवी की उपासना की और सरस्वती जी ने उनको वरदान दिया, जिसके फलस्वरूप कालिदास इतने प्रकाण्ड विद्वान् हुए।

विद्वान् हो जाने के बाद जब वे घर लौटे तो अपनी पत्नी से कहा 'अनावृतकपाटं द्वारं देहि।' पत्नी ने उनकी आवाज पहचानकर उत्तर दिया– 'अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः।' कहा जाता है कि कालिदास ने इनमें से तीन शब्दों को लेकर तीन काव्य-ग्रन्थ रचे। 'अस्ति' से कुमारसम्भव की रचना की जिसका प्रारम्भ 'अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः' आदि श्लोक से होता है। 'कश्चित्' से मेघदूत का निर्माण किया– 'कश्चित् कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः' और 'वाग्' शब्द से रघुवंश की रचना की– 'वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये।'

कालिदास के ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि वह जन्म से ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे, किन्तु अन्य देवताओं का भी आदर करते थे। मेघदूत और रघुवंश इस बात के परिचायक हैं कि उन्होंने भारतवर्ष का विस्तृत भ्रमण किया था। यही कारण है कि उनका भौगोलिक वर्णन बड़ा ही सुन्दर और स्वाभाविक है। उन्हें राजसी जीवन और राज-परिवारों का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने दरिद्रता आदि का वर्णन नहीं किया, जिससे मालूम होता है कि उनका जीवन बड़ा सुखमय और शान्त था। उन्होंने गीता, रामायण, महाभारत, वेद, पुराण, धर्मशास्त्र, दर्शन, ज्योतिष, आयुर्वेद, संगीत, व्याकरण, छन्दःशास्त्र और काव्यशास्त्रादि का गम्भीर अध्ययन किया था, ऐसा उनके ग्रन्थों से विदित होता है।

कालिदास की रचनाएँ– कालिदास की सात रचनाएँ प्रसिद्ध हैं–

➨ नाटक

(1) मालविकाग्निमित्र– यह पाँच अङ्कों का नाटक है, जिसमें विदिशा के राजा अग्निमित्र तथा मालवदेश की राजकुमारी मालविका का प्रेम और उनके विवाह का वर्णन है।

(2) विक्रमोर्वशीय– यह भी पाँच अङ्कों का नाटक है। इसमें राजा पुरूरवा तथा उर्वशी का प्रेम और उनके विवाह की कथा वर्णित है।

(3) अभिज्ञानशाकुन्तल– यह कालिदास का विश्वविख्यात नाटक है, जिसमें आठ अङ्कों में दुष्यन्त और शकुन्तला के विवाह की कथा का वर्णन है।

➨ काव्य-ग्रन्थ

(4) कुमारसम्भव– यह सत्रह सर्गों का महाकाव्य है जिसमें शिव-पार्वती के विवाह, कुमार स्वामिकार्तिकेय का जन्म तथा कुमार द्वारा तारकासुर के वध की कथा है, किन्तु यह अधूरा ही उपलब्ध होता है।

(5) रघुवंश– यह उन्नीस सर्गों का महाकाव्य है। इसमें भगवान् रामचन्द्र जी के पूर्वज महाराज रघु के जन्म से लेकर उनके बाद के सभी राजाओं की कथा है।

➨ गीतिकाव्य या खण्डकाव्य

(6) ऋतुसंहार–कालिदास की प्रथम काव्यकृति है। इसमें छहों ऋतुओं का बड़ा ही मनोरम वर्णन है।

(7) मेघदूत– यह एक खण्डकाव्य है। इसमें एक वियोगी यक्ष का अपनी विरहिणी पत्नी के पास बादल द्वारा सन्देश भेजने का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है।

कालिदास का समय–कालिदास के समय के विषय में प्रामाणिक सामग्री का नितान्त अभाव है। कालिदास ने स्वयं या उनके समकालीन किसी भी लेखक ने उनके विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। उनके समय के विषय में जो मत प्रस्तुत किये गये हैं, वे अनुमान पर आधारित हैं। कालिदास के समय के विषय में केवल एक तथ्य अकाट्य माना जाता रहा है, वह है कालिदास का विक्रमादित्य के नवरत्नों में होना।

विक्रमादित्य का समय विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न कालों में निर्धारित कर कालिदास का स्थिति-काल छठी शताब्दी ईसवी से लेकर प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व तक दोलायमान कर रखा है। उनके स्थिति-काल के विषय में निम्न मत प्रस्तुत किये गये हैं–

(1) चतुर्थ–पञ्चम शताब्दी ई० या गुप्तकालीन मत

(2) द्वितीय शताब्दी ई० पू० का मत

(3) षष्ठ शताब्दी ई० का मत

(4) प्रथम शताब्दी ई० पू० का मत

इनमें से प्रथम शताब्दी ई० पू० का मत ही युक्तियुक्त है, जिसका उपपादन अन्य मतों का निराकरण करते हुए किया गया है। संक्षेप में–

➨ चतुर्थ–पञ्चम शताब्दी ई० या गुप्तकालीन मत

यूरोपीय विद्वानों ने गुप्त नरेशों के समुन्नत साम्राज्य-काल में कालिदास का होना माना है। कीथ महोदय इस मत के समर्थक हैं कि शकों को भारत से निकाल बाहर करनेवाले, विक्रमादित्य की उपाधि धारण करनेवाले तथा अपने पूर्व के मालव संवत् को विक्रम संवत् के नाम से प्रचलित करनेवाले द्वितीय गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त (375–413 ई0) थे। उनके मतानुसार भारतीय इतिहास के इसी स्वर्णयुग में महाकवि कालिदास का होना पाया जाता है। इस मत के समर्थन में यह कहा जाता है कि कालिदास के 'कुमारसम्भव' नामक महाकाव्य की रचना सम्भवतः चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म को लक्ष्य में रखकर की गयी जान पड़ती है। कालिदास ने गुप् धातु का बार-बार प्रयोग किया है। हरिषेण कृत 'प्रयागवाली प्रशस्ति' में किये गये समुद्रगुप्त (336–375 ई0) के विजय-वर्णन में तथा 'रघुवंश' में वर्णित रघु के दिग्विजय में घटनाओं का बड़ा साम्य दिखायी पड़ता है। कालिदास के ग्रन्थों में वर्णित सुख-शान्ति का समृद्धिकाल गुप्तकाल का ही सूचक है।

➨ द्वितीय शताब्दी ई० पू० का मत

डॉ० कुन्हन राजा कालिदास की स्थिति ई० पू० द्वितीय शती में मानते हैं। वे कहते हैं कि कालिदास शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र के समकालीन थे और 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के भरत-वाक्य में उन्होंने अग्निमित्र का उल्लेख भी किया है। डॉ० राजा ने अग्निमित्र की राजधानी विदिशा बतायी है, जिसका उल्लेख कालिदास ने 'मेघदूत' में किया है।

➨ षष्ठ शताब्दी ई० का मत

डॉ० हार्नली का मत है कि छठी शताब्दी में मालवदेश के राजा यशोधर्मन ने हूणों को परास्त करके 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण की थी। फर्गुसन महोदय के मतानुसार इस विजय के उपलक्ष्य में इसी विक्रमादित्य उपाधिधारी राजा यशोधर्मन ने विक्रम संवत् चलाया और प्राचीनता का पुट देने के लिए 600 वर्ष पूर्व से (57 ई० पू० से) प्रचलित किया।

कुछ लोगों का कहना है कि 'मेघदूत' में कालिदास ने दिङ्नाग और निचुल का नामोल्लेख किया है, अतः वह दिङ्नाग का समकालीन था। दिङ्नाग एक बौद्ध दार्शनिक था जो 400–450 ई० में हुआ था।

➨ प्रथम शताब्दी ई० पू० का मत

भारत में यह बात लोक-प्रसिद्ध है कि महाराज विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा थे। उन्होंने शकों को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में 57 ई० पू० में विक्रमीय संवत् का प्रवर्तन किया। सोमदेवकृत 'कथासरित्सागर' में उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य का उल्लेख है। यह ग्रन्थ गुणाढ्य कृत बृहत्कथा पर आधारित है। गुणाढ्य का समय लगभग 78 ई० माना जाता है। 'कथासरित्सागर' का वृत्तान्त ऐतिहासिक और प्रामाणिक माना जा सकता है, क्योंकि उसके मूल लेखक गुणाढ्य विक्रमादित्य के समय के अत्यधिक समीप थे। 'कथासरित्सागर' में विक्रमादित्य के राज्याभिषेक का वर्णन है–

सोऽपि तद्विक्रमादित्यो राज्यमासाद्य पैतृकम्।
नभो भास्वानिवारेभे राजा प्रतपितुं क्रमात्॥

विक्रमादित्य संस्कृत भाषा का संरक्षक और उद्धारक था। वह कवियों का आश्रयदाता था, अतः वह कालिदास का आश्रयदाता रहा होगा।

कालिदास ने कितने ही अपाणिनीय प्रयोग किये हैं। इससे ज्ञात होता है कि कालिदास उस समय हुए थे, जब पाणिनीय व्याकरण पूर्णतया प्रतिष्ठित नहीं हुआ था। कालिदास की शैली से ज्ञात होता है कि उनके समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। पतञ्जलि (150 ई०पू०) के समय में संस्कृत बोलचाल की भाषा थी। यह महाभाष्य के सूत्र और वैयाकरण के शास्त्रार्थ से सिद्ध है। कालिदास का समय उनके समीप ही होना चाहिए।

प्रयाग के समीप भीटा ग्राम में एक मुद्रा प्राप्त हुई है। इसका समय ईसा से पूर्व प्रथम शती माना जाता है। इस मुद्रा पर वृक्षों को सींचती हुई दो कन्याओं तथा एक मृग का पीछा करते हुए एक राजा का चित्र अङ्कित किया गया है। विद्वानों का यह निश्चित मत है कि यह चित्र कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' के प्रथम अङ्क का है। इसलिए यह माना जाता है कि यह नाटक इससे (प्रथम शती ई० पू० से) पूर्व अवश्य लिखा गया होगा।

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर कालिदास का स्थिति-काल प्रथम शताब्दी ई० पू० प्रमाणित किया गया है।

कालिदास की शैली– कविता-कामिनी-कान्त कालिदास की शैली में कहीं उपमाओं का लालित्य है, तो कहीं अर्थान्तरन्यास का अर्थ-गाम्भीर्य, कहीं उत्प्रेक्षाओं की ऊँची उड़ान है, तो कहीं प्राञ्जल पदावली का सौकुमार्य; कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य;

कहीं कलाप्रधान है, तो कहीं कल्पनाप्रधान। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्य-गौरव को अधिक समुन्नत करती है।

(क) भाषा—कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि वह सदा रसानुकूल होती है। प्रकरण, प्रसङ्ग, पात्र और वर्ण्य-विषय के अनुरूप शब्दावली की संरचना मिलती है। इस प्रकार के पद-माधुर्य के कारण उनके काव्यों में संगीतात्मकता और लयात्मकता का दर्शन होता है। उनकी भाषा सरस, सरल और मनोरम है। लम्बे समासों का प्रायः अभाव है। कालिदास का यह शब्दलाघव उनकी कलात्मक अभिरुचि का परिचायक है।

(ख) भावाभिव्यक्ति—कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनके काव्यों में कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव-सौन्दर्य पग-पग पर परिलक्षित होता है।

(ग) रस—कालिदास मूलतः शृङ्गार रस के कवि हैं। वे सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकार के शृङ्गार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। करुण रस के भी कतिपय वर्णन अत्यन्त मार्मिक हैं। वीर रस के प्रसङ्ग यद्यपि कम हैं, तथापि उनमें कालिदास की योग्यता किसी भी प्रकार न्यून नहीं है। अन्य रसों के वर्णन अत्यल्प हैं।

(घ) गुण और रीति—कालिदास रस-सिद्ध कवि हैं। उनकी लोकप्रियता का प्रधान कारण है उनकी प्रसादपूर्ण, लालित्ययुक्त और परिष्कृत शैली। उनके सभी ग्रन्थ वैदर्भी रीति में लिखे गये हैं। मधुर शब्द, ललित रचना, समासों का सर्वथा अभाव या छोटे समासयुक्त पदों का होना, यही वैदर्भी रीति है। कालिदास की शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीनों गुणों की सत्ता है।

(ङ) अलङ्कार—कालिदास के काव्यों में अलङ्कार-विधान अनायास सिद्ध है। पद-पद पर अनुप्रास, उपमा, रूपक, दीपक, अर्थान्तरन्यास और उत्प्रेक्षाओं के दर्शन होते हैं। यद्यपि यमक, अतिशयोक्ति, दीपक, व्यतिरेक, प्रतिवस्तूपमा, श्लेष, निदर्शना, एकावली, दृष्टान्त, विरोधाभास, परिणाम आदि अलङ्कारों के भी सुन्दर प्रयोग मिलते हैं। उपमा कालिदास का अत्यन्त प्रिय अलङ्कार है। उनकी उपमाएँ असाधारण और मनोरम होती हैं। उनकी विशेषता यह है कि उनमें लिङ्ग-साम्य, भाव-साम्य और रमणीयता का अनुपम समन्वय है–

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनुर्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या॥ (रघु0 2/20)

नन्दिनी गाय राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के बीच वैसी शोभा पा रही है, जैसी दिन और रात के मध्य में होनेवाली रक्तवर्ण सन्ध्या।

अवाकिरन् बाललताः प्रसूनैराचारलाजैरिव पौरकन्याः॥ (2/10)

दिलीप के ऊपर बाललताओं ने फूलों की उसी प्रकार वर्षा की जैसे नगर की कन्याएँ मङ्गलार्थक धान के लावों की वर्षा करती हैं। अर्थान्तरन्यास में कवि का व्यावहारिक ज्ञान उच्च रूप में प्रकट हुआ है। उनके अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में प्रचलित हो गये। कहा भी गया है–**अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।**

(च) वर्णन-वैचित्र्य—कालिदास के वर्णनों में वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं। उन्होंने अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। मनोभावों का विशद वर्णन, प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति, वर्णनों में सजीवता और स्वाभाविकता, भावानुकूल पद-विन्यास, तात्त्विक वर्णनों के साथ व्यञ्जना वृत्ति का आश्रय, कला में कल्पना का संयोग और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति आदि गुण कालिदास के वर्णनों की विशेषताएँ हैं। सन्ध्याकाल में सूर्यास्त का कितना मनोरम वर्णन है–

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः॥ (रघु0 2/15)

छन्दोयोजना—महाकवि कालिदास छन्दों के प्रयोग में अति कुशल हैं। वे भावानुकूल छन्दों का प्रयोग करते हैं। करुण भावों को व्यक्त करने के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग तथा गहन एवं गम्भीर भावों को व्यक्त करने के लिए वे शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग करते हैं।

रघुवंश और कुमारसम्भव के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कालिदास को छोटे छन्द अधिक प्रिय थे। बड़े छन्दों का प्रयोग सर्गान्त में किया गया है। छोटे छन्दों में भी अनुष्टुप् अतिप्रिय छन्द हैं।

कालिदास की सर्वतोमुखी प्रतिभा उन्हें विश्व-साहित्य में असाधारण स्थान प्रदान करती है। उन्होंने महाकाव्य, गीतिकाव्य तथा नाट्य-रचना सभी में अपनी प्रखर प्रतिभा का समान परिचय दिया है।

●●

रघुवंश महाकाव्य : एक संक्षिप्त परिचय

महाकवि कालिदास की सात रचनाओं में रघुवंश को लेकर कहा जाता है–

''क इह रघुकारे न रमते?।''

अर्थात् संसार में कौन ऐसा व्यक्ति होगा, जिसे रघुवंश को पढ़ने और सुनने में रमण अर्थात् सम्पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहीं होगी। सम्पूर्ण आनन्द किसी सम्पूर्ण और श्रेष्ठ रचना से ही प्राप्त हो सकता है।

इसी प्रकार से गीतिकाव्यों में मेघदूत को लक्ष्य कर कहा गया है–

''मेघे माघे गतं वयः।''

अर्थात् कालिदास के 'मेघदूत' को तथा माघ के 'शिशुपालवध' को पढ़ने और समझने में एक विद्वान् व्यक्ति की समस्त आयु बीत सकती है। आधा जीवन भी यदि एक मेघदूत में व्यतीत माना जाय तो स्वतः सिद्ध है कि यह गीतिकाव्य अत्युत्तम है।

एवमेव कहा जाता है कि जीवित मनुष्यों को भूलोक का आनन्द मिलता है। देवतागण भुवःलोक में सुख प्राप्त करते हैं और पुण्यात्माओं को स्वर्गलोक का परमानन्द प्राप्त होता है। परन्तु समीक्षक कहते हैं कि जीवित व्यक्ति भूः, भुवः और स्वः – तीनों लोकों का आनन्द एक साथ और एक ही रचना से प्राप्त करना चाहे तो उसे केवल एक 'अभिज्ञानशाकुन्तल' का पठन, मनन, श्रवण, अधिग्रहण करना चाहिए–

''वासन्तं कुसुमं फलं च युगपत् ग्रीष्मस्य सर्वं च यत्,
यच्चानन्यमनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो–
रैश्वर्यं यदि वाञ्छसि प्रियसखे शाकुन्तलं सेव्यताम्॥''

उपर्युक्त तीनों अतिश्रेष्ठ रचनाओं में भी महाकाव्य 'रघुवंश' के नाम की सार्थकता निम्नलिखित वाक्य से स्वतः स्पष्ट होती है–

''रघूणां वंशः वर्ण्यते यस्मिन् तत्काव्यम्।''

अर्थात् जिस महाकाव्य में रघु के वंश का अथवा रघुवंश के राजाओं का वर्णन किया गया है, उसका नाम रघुवंश है।

सम्पूर्ण रघुवंश महाकाव्य का कथानक 19 सर्गों में विभक्त है। सभी सर्गों की कुल श्लोक संख्या 1569 है। कथा के अनुसार प्रत्येक सर्ग का पृथक् से नाम भी रखा गया है। उदाहरण के लिए हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित प्रथम सर्ग में 95 श्लोक हैं और इसका अभिधान है– 'वसिष्ठाश्रमाभिगमन' अर्थात् महर्षि वसिष्ठ के आश्रम की ओर गमन करना।

वैवस्वत मनु के वंशज राजा दिलीप और उनकी रानी सुदक्षिणा के कोई सन्तान नहीं हुई। दुःखी होकर वे दोनों कुलगुरु वसिष्ठ के आश्रम में गए। महर्षि वसिष्ठ ने कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करने का मार्ग सुझाया, ताकि अभीष्ट फल की प्राप्ति का वरदान पाया जा सके।

राजा दिलीप व रानी सुदक्षिणा ने इक्कीस दिनों तक नन्दिनी की सेवा की। बाईसवें दिन नन्दिनी ने राजा की प्रतिज्ञा व सेवा की परीक्षा ली। एक मायावी सिंह ने गाय को खाना चाहा। राजा ने गाय की रक्षा कर स्वयं को प्रस्तुत किया। विचलित न होते देखकर नन्दिनी प्रसन्न हुई और राजा को पुत्रप्राप्ति का वरदान दिया।

दिलीप व सुदक्षिणा के रघु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बड़ा हुआ। उसका विवाह किया। युवराज बनाकर राजगद्दी सौंप दी। स्वयं दिलीप ने 100 अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न किए। रघु को राजा बनाकर वन में चले गए।

रघु ने दिग्विजय यात्रा प्रारम्भ की। चारों दिशाओं में घूमता हुआ हिमालय पर पहुँचा। वहाँ विजयध्वज लहराकर अयोध्या लौटा। विश्वजित् नामक यज्ञ किया।

रघु के अज नामक पुत्र पैदा हुआ। बड़े होने पर अज विवाह के लिए विदर्भ के राजा भोज द्वारा आयोजित स्वयंवर में गए।

स्वयंवर में राजा भोज की बहन इन्दुमती ने सबको छोड़कर अज के गले में वरमाला डाली। राजा भोज ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी बहन का विवाह अज से कर दिया। यहीं पर प्रदत्त एक उपमा के कारण 'दीपशिखा कालिदास' उपाधि प्रसिद्ध हुई।

अज इन्दुमती को लेकर राजधानी में पहुँचे। रघु ने अज का राज्याभिषेक किया और सारा भार उसे सौंपकर वन में चले गए।

अज और इन्दुमती के पुत्र दशरथ का जन्म हुआ। दुर्घटना में इन्दुमती की मृत्यु हो गई। अपनी पत्नी के वियोग में किया गया अज का विलाप सम्पूर्ण साहित्य में प्रसिद्ध है। दशरथ का राज्याभिषेक कर अज ने भी प्राण त्याग दिए।

दशरथ ने कौशल्यादि तीन रानियों से विवाह किया। तमसा नदी के तट पर भूलवश शब्दवेधी बाण से श्रवणकुमार का वध हो गया। उसके अन्धे माता-पिता ने दशरथ को शाप दिया।

सन्तानहीनता से परेशान दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। तीन रानियों से चार पुत्र पैदा हुए। कौशल्या के राम, सुमित्रा के लक्ष्मण व शत्रुघ्न और कैकयी के भरत।

विश्वामित्र यज्ञ व तपस्वियों की रक्षा के लिए राम व लक्ष्मण को मांग ले गए। मिथिलानरेश जनक द्वारा आयोजित स्वयंवर में राम ने शिवधनुष तोड़कर सीता का वरण किया। इसी तरह लक्ष्मण का उर्मिला से, भरत का माण्डवी से व शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से विवाह हुआ।

राम के राज्याभिषेक की घोषणा से तिलमिलाकर कैकयी ने अपने वर मांगकर राम को चौदह वर्षों का वनवास और भरत को राजगद्दी दिलवा दी। पंचवटी में लक्ष्मण ने रावणभगिनी शूर्पणखा के नाक-कान काट लिए। रावण ने क्रुद्ध होकर सीता को चुरा लिया। हनुमान्जी ने सीता को खोजा। राम ने लंका पर चढ़ाई की। रावण को मारा। विभीषण को लंकाधिपति बनाया। स्वयं अयोध्या लौट आए।

पुष्पक विमान में आते समय सीता को पम्पासरोवर, पञ्चवटी, गोदावरी आदि स्थान दिखाए। अयोध्या के उपवन में ठहरे। भरत आकर उनसे मिले।

सीता के चरित्रविषयक सामाजिक कलंक के कारण राम ने सीता का निर्वासन कर दिया। लक्ष्मण गर्भवती सीता को वाल्मीकि के आश्रम में छोड़ आए।

वाल्मीकि आश्रम में सीता के लव और कुश नामक दो पुत्र हुए। बड़े हुए। लक्ष्मण के अंगद व चित्रकेतु, भरत के तक्ष व पुष्कल तथा शत्रुघ्न के शत्रुघाती व सुबाहु दो-दो पुत्र उत्पन्न हुए। सीता की प्रार्थना स्वीकार कर धरती फट गई। सीता धरती में समा गईं। राम भी अपने भाइयों के साथ स्वर्गारोहण कर गए।

शेष सातों भाइयों ने मिलकर कुश को अपने परिवार का मुखिया बनाया। कुश का नागकन्या कुमुद्वती से विवाह हुआ।

कुश व कुमुद्वती के पुत्र अतिथि ने चारों प्रकार की विद्यायें सीखीं। निषधराज की कन्या से अतिथि का विवाह हुआ। कुश की मृत्यु पर कुमुद्वती भी सती हो गई।

अतिथि के निषध और निषध के नल इत्यादि होते-होते रघुवंश में कुल 21 राजा क्रमशः उत्पन्न होकर राजगद्दी सम्भालते रहे। अन्तिम राजा अग्निवर्ण था।

भोगविलास में आकंठ डूबने के कारण अग्निवर्ण को क्षयरोग हो गया। उसका शरीर गल-गल कर पीला पड़ गया। अन्त में मर गया। उसकी गर्भवती रानी सिंहासन पर बैठी। मन्त्रियों की सलाह लेकर राजकाज करने लगी।

यही संक्षिप्त कथानक है, उस रघुवंश नामक महाकाव्य में विद्यमान 19 सर्गों का जिसमें सूर्यवंशी या इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की जीवनगाथा का क्रमशः वर्णन किया गया है। इन सभी 21 राजाओं में क्योंकि राजा रघु ने ही दिग्विजय की थी और अन्य किसी ने दसों दिशाओं को नहीं जीता था। अतः रघु ही प्रधान हुए और उनका तथा उनके वंश का वर्णन होने के कारण इस महाकाव्य का नाम 'रघुवंश' सर्वथा सार्थक सिद्ध हुआ।

➨ रघुवंश : मंगलाचरण एवं कवि की विनम्रता

संस्कृत साहित्य-शास्त्र के आचार्यों के अनुसार महाकाव्य के प्रारम्भ में किया जाने वाला मंगलाचरण तीन प्रकार का हो

सकता है– आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक। इनमें से प्रथम में महाकवि अपनी रचना की निर्विघ्न पूर्ति के लिए और अपने कार्य में सम्पूर्ण सफलता के लिए अपने आराध्य से आशीर्वाद की कामना करता है।

द्वितीय प्रकार में महाकवि अपने आराध्य के चरणों में नमस्कार करता है और आराध्य की विशेषताओं का बखान करता है। प्रत्यक्ष रूप से किसी कामना या इच्छा के प्रकटीकरण के बिना भी इस प्रकार में भी नमस्कार के प्रतिफलस्वरूप महाकवि को उसकी कामनापूर्ति का मौन आशीर्वाद तो मिल ही जाता है।

अन्तिम प्रकार में मंगलाचरण कथानक के अनुरूप तथ्यात्मक होता है। इस रचना में विद्यमान कथा का, कथा के पात्रों का, मुख्य घटना का अथवा प्रसिद्ध स्थान का सांकेतिक रूप से उल्लेख होता है। इससे रचना की संक्षिप्त भूमिका बन जाती है।

रघुवंश महाकाव्य का मंगलाचरण उपर्युक्त तीनों में से नमस्कारात्मक श्रेणी का है। यह तो सर्वथा स्पष्ट है कि हर व्यक्ति अपने ही आराध्य या इष्ट की वन्दना करता है। महाकवि कालिदास शैव थे। अतः उन्होंने मंगलाचरण में भी शिवशक्ति की ही आराधना की है। पार्वती और परमेश्वर शिव का सम्बन्ध उसी प्रकार से अटूट व अगाध है जिस प्रकार शब्द और अर्थ का होता है। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व ही सम्भव नहीं है। शब्द के बिना अर्थ की सत्ता नहीं हो सकती और अर्थ के बिना शब्द स्वतः निरर्थक या प्रलाप हो ही जाता है। वैसे ही पार्वती के बिना परमेश्वर की और परमेश्वर के बिना पार्वती की सत्ता हो ही नहीं सकती। शरीर भले ही दो होवें परन्तु आत्मा तो एक ही होता है। 'अर्द्धनारीश्वर' स्वरूप भी इसी बात की पुष्टि करता है। नित्यसम्बन्धयुक्त तत्त्व के विषय में कालिदास लिखते हैं–

''वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥''

इसमें एकशेषद्वन्द्व समास से 'पितरौ' शब्द की सार्थकता अधिक बढ़ जाती है। सृजन करने के लिए दो तत्त्वों का अटूट सम्बन्ध परमावश्यक है। सन्तानोत्पत्ति के लिए माता व पिता दोनों का समभाव सम्बन्ध अत्यावश्यक है। पिता के बिना अकेली माता सन्तति जनन में जैसे सक्षम नहीं, वैसे ही माता के बिना पिता अक्षम है। रज और वीर्य–दोनों का सम्पृक्त सम्बन्ध होता है। पार्वती और परमेश्वर भी इस जगत् के माता-पिता हैं।

सफलता के लिए दोनों का सम्मिलित आशीर्वाद एकीकृत भाव से आवश्यक रूप से चाहिए। मंगलाचरण में उपमालंकार का सुन्दर प्रयोग करते हुए महाकवि ने–

''उपमा कालिदासस्य।''

इस उक्ति को भी प्रथम श्लोक में ही सार्थक और प्रमाणित कर दिया है।

कालिदास की विनम्रता– महान् लोगों की महानता का मूल कारण ही यह होता है कि सारा संसार उन्हें महान् मानता है परन्तु वे स्वयं अपने-आपको ऐसा नहीं मानते हैं। कालिदास भले ही विश्वकवि, कविकुलगुरु, कविकुलशिरोमणि, दीपशिखाकालिदास इत्यादि विशिष्ट उपाधियों से विभूषित किए गए हों परन्तु सूर्यवंश का वर्णन करने में वे अपने-आपको बहुत छोटा मानते हैं–

''क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्व चाल्पविषया मतिः।''

अर्थात् कहाँ तो सूर्य की परम्परा में वैवस्वत मनु का वंश और कहाँ अत्यल्प विषयों को जानने वाली मेरी छोटी-सी बुद्धि?

जिस वाक्य में दो अलग वस्तुओं के लिए दो बार 'क्व' शब्द का प्रयोग होता है, वहाँ पर उन दोनों विषयों में महदन्तर ज्ञात होता है। कालिदास स्वयं को सूर्यवंश के राजाओं का वर्णन करने में समर्थ नहीं मानते हैं और अपने इस प्रयास को उसी तरह का मानते हैं, जैसे कोई अल्पबुद्धि व्यक्ति लकड़ी की छोटी-सी नाव या डोंगी में बैठकर महासागर को तैरने का प्रयास करे।

कालिदास की बुद्धि उडुप है और सूर्यवंश महासागर है। परन्तु ऐसा होने पर भी प्रयास तो करना ही होता है। विशेषता भी इसी बात में है कि डोंगी से महासमुद्र को पार किया जाये। तभी तो वाहवाही मिलती है अन्यथा बड़े जहाज में बैठकर तो कोई भी समुद्र को पार कर सकता है। उसमें कौन-सी बड़ी बात है।

इसी बात का विस्तार करते हुए कालिदास दूसरा उदाहरण देते हैं और कहते हैं कि –

''मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।''

अर्थात् मैं मन्दमति होकर भी एक कवि के रूप में यश को प्राप्त करने की इच्छा रखता हूँ तो उसी प्रकार से उपहास का पात्र बनूँगा जिस प्रकार से वामनशरीरी व्यक्ति उपहासास्पद बन जाता है, जब वह किसी ऊँची डाली पर लगे फल को तोड़ने का प्रयास उछल-उछल कर करता है। लम्बे हाथों वाला भी जिसे आसानी से नहीं प्राप्त कर सकता, उसे बौना व्यक्ति उछलकर प्राप्त करने का प्रयास करे तो हँसी का पात्र तो बनेगा ही।

यहाँ पर वामनशरीरी और मन्दमति होकर भी महाकवि का यश प्राप्त करने का प्रयास करते हुए कालिदास वास्तव में महर्षि वाल्मीकि तथा महर्षि च्यवन की ओर संकेत करते हैं। ये दोनों ही महाशय कालिदास से पूर्ववर्ती हैं। दोनों ने सूर्यवंश में उत्पन्न राजाओं का यशोगान किया है। दोनों ने ही संसार में अपने इस कार्य के लिए महाकवि के रूप में ख्याति प्राप्त की है। स्वयं से पहले यदि कोई व्यक्ति सम्पूर्ण और बड़ी सफलता उसी क्षेत्र में प्राप्त कर चुका होता है तो परवर्ती व्यक्ति के मन में शंकायें और अधिक बढ़ जाती हैं। पूर्ववर्तियों से आगे निकलने की इच्छा तो मन में रहती है परन्तु सफलता को लेकर सन्देह और बढ़ जाता है।

मन में ऐसी और इतनी शंकाओं के होते हुए भी अपने द्वारा किए जा रहे प्रयास के कारण का उल्लेख करते हुए कालिदास कहते हैं कि यूँ देखा जाय तो मेरा मार्ग थोड़ा सरल ही है। मुझसे पूर्ववर्ती विद्वान् महाकवियों ने इस विषय को लेकर और सूर्यवंश का वर्णन कर मुख्य द्वार तो खोल ही रखा है। मुझे पहली बार बन्द दरवाजे को नहीं खोलना है। यह तो सभी जानते हैं कि खुले हुए दरवाजे से किसी भी भवन में प्रवेश करना आसान वैसे ही होता है जैसे किसी कठोरमणि में हीरे से यदि छेद कर दिया जाय तो उस छेद में धागे के लिए प्रवेश करना बहुत आसान हो जाता है। इसलिए जीवन में पथचयन को लेकर कभी सन्देह उत्पन्न होवे तो कहा जाता है–

''महाजनो येन गतः स पन्थाः।''

अर्थात् महान् जन जिस नीति या पद्धति को लेकर चले हों, उसी सिद्धान्तमय पथ पर अग्रसर हो जाना चाहिए। कालिदास ने भी यही किया है।

➨ रघुवंशी राजाओं की विशेषताएँ

'रघुवंश' महाकाव्य के प्रारम्भ में मंगलाचरण और अपनी अल्पज्ञता को उपस्थित करने के बाद तथा पूर्ववर्ती महाकवियों के पदचिह्नों का अनुसरण करने का विचार प्रकट करते हुए कालिदास कहते हैं कि अब मैं उन रघुवंशी राजाओं का वर्णन करने जा रहा हूँ, जो आजन्म शुद्ध हैं। यहाँ पर आजन्म शुद्धि से तात्पर्य जन्म लेने के पश्चात् उन राजाओं का सभी प्रकार के संस्कारों से संस्कारित होने से है। क्योंकि जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, कर्णवेध, चूड़ाकर्म, उपनयन, वेदारम्भादि संस्कारों को यथासमय सम्पन्न करने पर ही जन्म की शुद्धि होती है। रघुवंशी राजाओं के गर्भाधान से लेकर अंत्येष्टि तक सभी संस्कार यथाविधि और यथा समय सम्पन्न किए जाते थे।

दूसरी विशेषता है– **'आफलोदयकर्मणाम्'** अर्थात् रघुवंशी राजा फल प्राप्ति हो जाने तक निरन्तर कर्म करते ही हैं। न तो किसी काम को हड़बड़ी में प्रारम्भ करते हैं और न ही विघ्नों के आ जाने पर कभी किसी काम को अधूरा छोड़ते हैं। ये राजा उत्तमगुणी हैं क्योंकि–

''न प्रारब्धमुत्तमगुणाः परित्यजन्ति''

अर्थात् श्रेष्ठगुणसम्पन्न व्यक्ति एक बार प्रारम्भ किए कार्य को पूरा करके ही विश्राम लेते हैं।

तीसरी विशेषता सूर्यवंशी राजाओं की यह है कि वे पृथ्वी के किसी एक छोटे भू-भाग पर राज नहीं करते अपितु समुद्र से लेकर समुद्र पर्यन्त फैली हुई सम्पूर्ण पृथ्वी पर उनका एकच्छत्र राज रहता है। यही कारण है कि वे चक्रवर्ती सम्राट की उपाधि से विभूषित होते हैं।

चौथी विशेषता के अनुसार प्रस्तुत वंश के राजाओं के रथ का मार्ग स्वर्ग तक जाता है।

'अनाकरथवर्त्मनाम्' कहने का यही तात्पर्य है कि इन राजाओं के सम्बन्ध केवल पृथ्वीलोक पर ही नहीं हैं अपितु स्वर्ग के अधिपति इन्द्र और अन्य देवताओं से भी इनके सहज सम्बन्ध हैं।

पाँचवीं विशेषता के अनुसार ये सभी राजा **यथाविधिहुताग्नि** हैं। अर्थात् वैदिक विधि-विधान के अनुसार देवताओं का

पूजन, हवन, यज्ञादि सम्पन्न करते हैं। इससे उनके राज्य में सुखशान्ति व समृद्धि रहती है। कभी अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि जैसे प्राकृतिक प्रकोप उन्हें झेलने नहीं पड़ते हैं।

छठी विशेषता के अनुसार ये राजा **यथाकामार्चितार्थी** हैं अर्थात् अपने द्वार पर उचित कामना और प्रार्थना लेकर आए हुए याचकों को कभी निराश नहीं करते। उन्हें खाली हाथ नहीं लौटाते हैं। **'अतिथि देवो भव'** की भावना का समुचित रूप से पालन करते हैं।

सप्तम वैशिष्ट्य इन राजाओं का यथापराधदण्डी होना है अर्थात् प्रथमतः तो उनके राज्य में कोई अपराध करने की हिम्मत ही नहीं करता था। यदि कोई अपराध करता तो तत्काल उसे उचित मात्रा में दण्ड मिल जाता। निरपराध को दण्ड नहीं भुगतना होता था। शासन का तीसरा स्तम्भ न्याय व्यवस्था समुचित थी।

आठवीं विशेषता उन राजाओं की यह है कि वे त्यागाय-संभृतार्थ हैं। अर्थात् केवल अपने ऐशो-आराम के लिए अथवा खजाने को भरने मात्र के लिए प्रजा से कर नहीं वसूलते हैं। अपितु व्यक्तिगत रूप से कर इकट्ठा करने के बाद वे प्रजा के हित के लिए सामाजिक और सामूहिक रूप से उसको व्यय कर देते हैं।

अग्रिम वैशिष्ट्य उन राजाओं के द्वारा सदैव सत्य ही बोला जाना है। **''सत्यं वद। धर्मं चर।''** इत्यादि उपनिषद्वाक्यों का वे पूर्णतया पालन करते हैं। सत्य बोलने का एक उत्तम तरीका है– मितभाषी होना अर्थात् कम से कम बोलना। क्योंकि आवश्यकता से अधिक बोलने वाले के झूठ बोलने की सम्भावना भी उतनी ही बढ़ जाती है।

दसवीं विशेषता सूर्यवंशी राजाओं की प्रजार्थ-गृहमेधी होना है। अर्थात् वे राजा वंशवृद्धि करने और सन्तानोत्पत्ति के लिए ही गृहस्थाश्रम का उपभोग करते हैं। केवल अपने इन्द्रियसुख के लिए ही विवाह नहीं करते। सन्तति वृद्धि के अतिरिक्त वे प्रायः तपस्वियों तथा संन्यासियों जैसा संयमित जीवन जीते हैं।

कालिदास इन मनुवंशी की अत्युत्तमजीवनवृत्ति का संक्षेप करते हुए कहते हैं–

''शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥''

अर्थात् शैशवकाल में वे पूर्णतया विद्यार्थी ही होते हैं। विद्या का अभ्यास करते हैं। अपने ज्ञान कोष को बढ़ाते हैं। युवावस्था में गृहस्थ धर्म को निभाने के लिए रूप, रस, गन्धादि सांसारिक विषयों का सेवन करते हैं। वृद्धावस्था में सम्राट होते हुए भी सब कुछ त्याग कर मुनियों के समान आचरण करते हैं। अन्त में योग के द्वारा अपने शरीर का त्याग स्वयं करते हैं अर्थात् किसी रोगादि के कारण उनकी मृत्यु नहीं होती। सूर्यवंशी राजाओं के चरित्र में इतनी सारी उत्तमोत्तम विशेषताओं का प्रतिपादन महाकवि द्वारा किया गया है।

➨ राजा दिलीप का व्यक्तित्व

महाकवि कालिदास सम्पूर्ण 'रघुवंश' महाकाव्य के नायकसमूह सूर्यवंशी राजाओं का वर्णन करने के बाद प्रथम सर्ग के प्रमुख पात्र राजा दिलीप की पहली विशेषता प्रतिपादित करते हुए लिखते हैं–

''दिलीप इति राजेन्द्रिन्दुः क्षीरनिधाविव।''

अर्थात् जिस प्रकार से क्षीरसागर से चन्द्रमा उत्पन्न हुए, उसी प्रकार से वैवस्वत नामक मनु के वंश में दिलीप उत्पन्न हुए, जो सभी राजाओं में अतिश्रेष्ठ सम्राट के रूप में विख्यात हुए। यहाँ चन्द्रमा से तुलना करने का तात्पर्य यह है कि दिलीप का स्वभाव भी चन्द्रमा के समान शीतल था और उनके दर्शन से प्रजा को आत्मिक शान्ति मिलती थी।

शारीरिक रूप से दिलीप का वक्षस्थल अत्यन्त विशाल था। उनके कन्धे उभरे हुए तथा अत्यन्त मजबूत हैं ताकि राज्य का भार आसानी से उठा सकें। दिलीप की दोनों भुजायें शालवृक्ष के तने के समान लम्बी और सुदृढ़ थीं। इतनी सारी विशेषताओं से परिपूर्ण दिलीप कैसे जान पड़ते थे? कालिदास लिखते हैं–

''आत्मकर्मक्षमं देहं क्षात्रो धर्म इवाश्रितः।''

अर्थात् अपने लिए निर्धारित कर्मों को सही ढंग से सम्पन्न करने के लिए स्वयं क्षत्रिय धर्म ने साक्षात् शरीर धारण कर लिया हो। आगे चलकर इसी महाकवि ने परिभाषा देते हुए लिखा है कि जो सभी प्रकार के संकटों से अपने राज्य और अपनी प्रजा

की रक्षा करता है वही सच्चा क्षत्रिय होता है।

कालिदास लिखते हैं कि राजा दिलीप ने अपने व्यक्तित्व के पराक्रम, तेज, विशालकाय शरीर से सभी को पीछे छोड़कर समस्त भूमण्डल को उसी प्रकार से अपने अधीन कर लिया था, जिस प्रकार से अपनी सुदृढ़ता, विशालता और ऊँचाई के कारण बाकी सभी पर्वतों को दबाकर सुमेरुपर्वत ने पृथ्वीलोक को व्याप्त कर रखा है। यहाँ सुमेरुपर्वत से तुलना करना ही दिलीप की विशेषताओं को बताने के लिए पर्याप्त है।

महाकवि कहते हैं कि किसी भी व्यक्ति का केवल शारीरिक रूप से सुदृढ़ होना ही पर्याप्त नहीं है अपितु मानसिक और बौद्धिक क्षमता भी उतनी ही आवश्यक है। राजा दिलीप का शरीर जितना विशालकाय था, उनकी बुद्धि भी उतनी ही कुशाग्र थी। अपनी तीक्ष्ण बुद्धि को वे निरन्तर शास्त्रों के अभ्यास से और तीव्र बनाते थे। शास्त्रों के अभ्यास से प्राप्त ज्ञान के अनुसार वे उत्तमोत्तम कार्यों में भरपूर परिश्रम करते थे और परिश्रमी व्यक्ति का सफलता प्राप्त करना निस्सन्दिग्ध होता ही है।

'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात् जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है अथवा राजा के आचरण को देखकर ही प्रजा भी अपना आचरण निश्चित करती है। इस विषय को लेकर कहा गया है–

''न व्यतीयुः प्रजास्तस्य नियन्तुर्नेमिवृत्तयः।''

अर्थात् जिस प्रकार से कुशल सारथि के द्वारा चलाए जाने वाले रथ का पीछे वाला पहिया आगे वाले पहिए के निशान से थोड़ा भी इधर-उधर नहीं होता है, उसी प्रकार से दिलीप की प्रजा भी उनके द्वारा निर्धारित आचरण का लेशमात्र भी उल्लंघन नहीं करती थी।

राजा का एक प्रमुख अधिकार और कर्त्तव्य होता है– अपनी प्रजा से षष्ठांश अर्थात् कर वसूल करना। इस कार्य में भी दिलीप की दक्षता यह है कि वे प्रजा से कर वसूल करने के बाद केवल खजाना नहीं भरते थे, अपितु अपनी ओर से उसमें कुछ मिलाकर वापस प्रजा के हितार्थ वैसे ही खर्च कर देते हैं, जैसे सूर्य धरती पर विद्यमान जल को सोखकर उसे हजार गुना कर के पुनः वर्षा कर देता है।

राजा के पास एक अदद सेना का होना आवश्यक है। दिलीप के पास भी चतुरंगिणी सेना थी। परन्तु वह केवल आभूषण के रूप में थी। सेना का प्रयोग करने की उसे आवश्यकता ही नहीं होती थी। क्योंकि उसके सारे कार्य उसकी शास्त्रगत कुशाग्र बुद्धि और धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चा– इन दो कारणों से सिद्ध हो जाते हैं। सामान्य सी बात है– जब सीधी अंगुली से घी निकल जाये तो उसे टेढ़ा करने की क्या आवश्यकता है?

दिलीप की अनन्यतम विशेषता है– अपनी योजनाओं को गुप्त रखना। अपने कार्यों में लगातार लगे रहना। जैसे विधाता के कार्यों की सफलता उनके पूर्ण होने पर ही ज्ञात होती है, वैसे ही दिलीप की योजनाओं का ज्ञान भी लोगों को फल देखकर होता था। वह पहले से कभी ढोल नहीं पीटता था।

दिलीप के व्यक्तित्व में परस्पर विरोधी गुणों का अभूतपूर्व समन्वय देखने को मिल जाता था। निर्भय होकर भी अपनी रक्षा के प्रति सदैव सतर्क रहता था। निरोग होकर भी लगातार धर्म का पालन करता था। लोभ से रहित रहकर भी धन का संग्रह करता था। आसक्ति रहित होकर भी सुखों का उपभोग करता था। ज्ञानी होकर भी मौन रहता था। शक्तिशाली होकर भी सदैव क्षमा करता था। दान-दक्षिणादि देकर भी अपनी प्रशंसा कभी नहीं करवाता था। मानो ये सारे विरोधी गुण उसके व्यक्तित्व में आकर सहोदर बन गए–

''गुणानुबन्धित्वात्तस्य गुणा सप्रसवा इव।''

दो प्रकार के वृद्ध होते हैं– वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्ध। युवावस्था में ही दिलीप ने समस्त प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। अतः वह ज्ञानवृद्ध का सम्मान पाता था। रूप, रस, गन्धादि सांसारिक विषयों में उसकी आसक्ति नहीं के बराबर थी।

सामान्य रूप से राजा अपनी प्रजा का पिता कहलाता है और प्रजा उसकी सन्तति। परन्तु दिलीप केवल कहलाने मात्र के लिए पिता नहीं था। वह अपनी प्रजाओं के लिए उचित शिक्षा प्रदान करता था। संकटों से अपनी प्रजाओं की रक्षा करता था। उनके भरण-पोषण की पूरी व्यवस्था करता था। इसलिए–

''स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः।''

अर्थात् दिलीप ही प्रजाओं का वास्तविक पिता था। प्रजाओं के पिता तो केवल उनको जन्म देने के हेतु मात्र कहे जाते थे।

समाज में कानून व्यवस्था बनी रहे, किसी प्रकार की अशान्ति न फैले, इस बात को ध्यान में रखकर अपराधियों को समुचित दण्ड देता था। वंशवृद्धि के लिए विवाह कर गृहस्थाश्रम में निवास करता था।

मानव जीवन के मानदण्ड पुरुषार्थचतुष्टय में प्रथम तीन की स्थिति यह थी कि दिलीप के अर्थ और काम भी धर्म पर ही आधारित थे। धर्महीन अर्थोपार्जन और नीतिविहीन कामोपभोग अराजकता का ही हेतु बनते हैं। जहाँ धर्म केन्द्र में होता है और बाकी पुरुषार्थ उसकी परिधि में होते हैं वहाँ सुख, शान्ति, सफलता आदि सदैव रहते हैं।

रघुवंशी राजाओं के शासनकाल की पहली विशेषता मानी जाती है कि चोरी-चकारी इत्यादि नहीं होती थी। दिलीप के राज्य में इस विषय की यथास्थिति का वर्णन है–

''**श्रुतौ तस्करता स्थिता**'' अर्थात् चोरी शब्द केवल बोलने और सुनने के लिए ही बचा था। हकीकत में या कार्यरूप में इसकी परिणति नहीं होती थी।

अपने या पराए की भावना सम्बन्ध के आधार पर दिलीप के मन में नहीं रहती थी। विचारों से विरोधी व्यक्ति वैरी होते हुए भी स्वभाव से शिष्ट व सज्जन होने पर दिलीप को वैसे ही प्रिय लगता था जैसे रोगी व्यक्ति को दवा कड़वी होने पर भी प्रिय लगती है, और उसका सगा सम्बन्धी होने पर भी स्वभाव से दुष्ट वैसे ही अप्रिय था, जैसे सर्प के द्वारा काटी गई अंगुली त्याज्य होती है।

चक्रवर्ती सम्राट के रूप में दिलीप की प्रतिष्ठा थी। समुद्र पर्यन्त फैली हुई सम्पूर्ण पृथ्वी पर उसका ही एकच्छत्र राज्य था। सम्पूर्ण वसुधा पर वह एक नगरी या राजधानी के समान ही शासन को चलाता था–

''**अनन्यशासनामुर्वीं शशासैकपुरीमिव।**''

महाकवि कालिदास ने महाराजा दिलीप के साथ ही महारानी सुदक्षिणा का भी संक्षेप में प्रभावी वर्णन उपस्थित किया है। मगधवंश में जन्म लेने वाली सुदक्षिणा अपनी उदारता के कारण और स्वभाव की शिष्टता के कारण अत्यन्त लोकप्रिय थी। दिलीप की धर्मपत्नी के रूप में वह वैसे ही ख्याति प्राप्त थी जैसे यज्ञ की भार्या के रूप में दक्षिणा प्रसिद्ध है। सुदक्षिणा लक्षणों से व स्वभाव से साक्षात् लक्ष्मी थी–

''**तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।**''

अर्थात् अनेक रानियों के होते हुए भी दिलीप केवल सुदक्षिणा और लक्ष्मी–इन दोनों के कारण ही स्वयं को कलत्रवन्त मानते थे।

➨ रघुवंश में प्रकृति वर्णन

रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग का भी नाम है–'वसिष्ठाश्रमाभिगमन' अर्थात् वशिष्ठ ऋषि के आश्रम की ओर जाना। अपनी सन्तानहीनता के निवारण तथा उपाय का मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए नायक-नायिका राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा वसिष्ठाश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं।

जिस रथ पर आरूढ़ होकर राजा-रानी राजधानी से चले, वह दिखने में अत्यन्त मनोहर और आकार में बादल के समान विशाल था। रथ के पहियों में से गम्भीर ध्वनि सुनाई दे रही थी। महाकवि के शब्दों में–

''**पावृषेण्यं पयोवाहं विद्युदैरावताविव।**''

अर्थात् रथारूढ़ वे दोनों ऐसे लग रहे थे जैसे घनघोर वर्षाकाल में बादल पर चढ़कर ऐरावत और बिजली– दोनों एक साथ जा रहे हों। इसमें गौरवर्णा सुदक्षिणा विद्युत है। विशालकाय दिलीप ऐरावत हैं। उपमा की सटीकता दर्शनीय है।

प्रथम तो राजा आश्रम में जा रहे थे। द्वितीय उन्हें वहाँ कोई युद्ध नहीं लड़ना था। अतः सेना को उन्होंने साथ नहीं लिया। केवल निजी एकाध सेवक को ही साथ लिया। अधिक सेना ले जाने से आश्रम में विघ्न भी उत्पन्न हो सकते हैं।

राजा और रानी को चलते समय वन में ऐसी वायु स्पर्श करते हुए सुख प्रदान कर रही थी, जो शीतल तो थी ही और साथ ही साथ शाल वृक्षों की गोंद से सुगन्धित भी हो रही थी। सुखद पवन की दोनों विशेषतायें शीतलता व सुगन्धमयता इसमें विद्यमान हैं। वन में विद्यमान वृक्षों के पत्ते धीरे-धीरे लगातार हिल रहे थे।

रथ की मधुर आवाज को सुनकर मयूर अपना सिर ऊपर उठाते और बड़ी ही मीठी आवाज में केका करते थे। मोरों की केका को सुनना आनन्दप्रद था। वनक्षेत्र सामान्य रूप से शान्त होता है। उसमें किसी बाहरी तत्त्व के प्रवेश करने पर वन-निवासी

प्राणियों का आकृष्ट होना स्वाभाविक है। रथ की आवाज को सुनकर मृगों के जोड़े बहुत उत्सुकता से राजा-रानी को देख रहे थे। मृगयुगल की आँखें नरयुगल की आँखों से अत्यन्त समानता रखती हैं।

नीले आकाश में उड़ते हुए सफेद सारस पक्षियों की एकताबद्ध लम्बी कतार ऐसी दिख रही थी, मानो किसी ने बन्दनवार की ऐसी माला उपस्थित कर दी हो, जिसको बाँधने के लिए दीवार या खम्बों की आवश्यकता नहीं होती–

''पवनस्यानुकूलत्वात्प्रार्थनासिद्धिशंसिनः।''

अर्थात् मन्द-मन्द चल रही पवन की अनुकूलता दिलीप और सुदक्षिणा के लिए मनोरथसिद्धि का संकेत दे रही थी। किसी भी कार्य को करने के लिए प्रस्थान करने पर प्राकृतिक रूप से शकुनाशकुन हुआ करते हैं। वायु का अनुरूप प्रवाह भी एक मंगल संकेत प्रदान कर रहा था। यही कारण है कि घोड़ों के खुरों से उड़ने वाली धूल दोनों के शरीर का स्पर्श भी नहीं कर पा रही थी।

तालाबों के अन्दर कमल के विभिन्न रंग-बिरंगे पुष्प खिले हुए थे। पानी के कारण शीतल और कमलों की सुगन्ध के कारण सुगन्धित पवन की अनुकूलता वस्तुतः प्रशंसनीय थी। जो ग्राम स्वयं राजा दिलीप ने यज्ञ करने के बाद दक्षिणा के रूप में पुरोहितों को दिए थे, उन ग्रामों में पहुँचने पर ग्रामीण अर्घ्य लेकर राजा-रानी के पास आते और बड़े मुक्त भाव से दोनों को कार्यसिद्धि के लिए मंगलमय शुभकामनायें और आशीर्वचन देते थे।

मार्ग में अनेक प्रकार के ऐसे वृक्ष विद्यमान थे, जिनके नाम दिलीप व सुदक्षिणा नहीं जानते थे। उनके नाम वे उन वृद्ध ग्रामीणों व ग्वालों से पूछ रहे थे, जो अपनी ओर से भेंट के रूप में हैयंगवीन अर्थात् एकदम ताजा मक्खन लेकर आते थे। अपने घर में जो भी पदार्थ विद्यमान होवे, उसे स्नेहपूर्वक समर्पित कर देना गाँव वालों का सहज स्वभाव होता है।

दोनों में राजा दिलीप रानी सुदक्षिणा के लिए मार्गदर्शक का कार्य कर रहे थे। रानी जिन-जिन पदार्थों व वनस्पतियों के बारे में पूछती, राजा यथासम्भव उनका वर्णन करके रानी की जिज्ञासा को शान्त करते थे।

नितान्त श्वेत और शुद्धवेष को धारण करने वाले दिलीप और सुदक्षिणा जाते समय कैसे लग रहे थे, इस विषय में अतीव सुन्दर उपमा इस प्रकार से दी गई है–

''हिमनिर्मुक्तयोर्योगे, चित्राचन्द्रमसोरिव।''

अर्थात् घने कोहरे से मुक्त हो जाने पर चित्रा नक्षत्र और चन्द्रमा के समान ही वे दोनों शोभायमान हो रहे थे।

इस प्रकार से दिन भर यात्रा करके राजा दिलीप अपनी महारानी के साथ सायंकाल महर्षि वशिष्ठ के आश्रम में पहुँचे।

➨ महर्षि वशिष्ठ का आश्रम

संसार में प्रत्येक स्थान विशेष की अपनी मूल विशेषतायें होती हैं। राजमहल से आश्रम का स्थान भिन्न होता है। प्रथम विशेषता के अनुसार आश्रम के कुलपति और तत्रस्थ तपस्वी स्वभाव से अत्यन्त शान्त तथा संयमी होते हैं। काम, क्रोधादि षड्विकार आश्रमवासियों के जीवन में प्रायः नहीं होते हैं। वे निश्छल और निष्कपट होते हैं।

विश्वकवि कालिदास महर्षि वशिष्ठ के पवित्र आश्रम का स्वरूप बताते हुए लिखते हैं–

''वनान्तरादुपावृत्तैः समित्कुशफलाहरैः।''

अर्थात् वहाँ रहने वाले तपस्वी वन-वनान्तरों से समिधायें, पुष्प, कुशायें, फलादि लेकर सायं आश्रम में लौटते हैं, तो यज्ञ के अग्निदेवता आगे बढ़कर उनका स्वागत उसी प्रकार से करते हैं, जिस प्रकार से अपनी सन्तानों के कार्यस्थल से वापस आने पर मातायें उनका हार्दिक स्वागत करती हैं। 'पूर्यमाण' विशेषण के प्रयोग से ज्ञात होता है कि तपस्वियों से आश्रम भरा रहता था।

आश्रम में चारों ओर पर्णकुटियाँ बनी हुई थीं। पर्णशालाओं के अन्दर ऋषियों की पत्नियाँ अपना-अपना सामान्य कार्य कर रही थीं और दरवाजे पर मृगों के यूथ इस आशा से बैठे हुए थे कि हमें अपना नीवार का भाग थोड़े समय बाद प्राप्त हो जायेगा। यहाँ मृगों और ऋषिपत्नियों के बीच में भी वही शाश्वत् सम्बन्ध है, जो परिवार में सन्तानों और माँ के बीच में होता है।

प्राकृतिक रूप से हरा-भरा वातावरण महर्षि वशिष्ठ के आश्रम की अन्यतम विशेषता है। चारों तरफ बड़े-बड़े पेड़ तो थे ही, परन्तु उन सभी के बीच-बीच में छोटे-छोटे पौधे भी विद्यमान थे। छोटे पौधों को पनपाने के लिए पानी पिलाने की जिम्मेदारी मुनिकन्याओं की थी–

''सेकान्ते मुनिकन्याभिस्तत्क्षणोज्झितवृक्षकम्।''

अर्थात् मुनिकन्याओं ने पौधों के चारों ओर मिट्टी के आलवाल बना रखे थे। वे उनमें धीरे से पानी भरती थीं और तत्काल वहाँ से दूर चली जाती थीं,ताकि उस पानी को पीकर अपनी प्यास बुझाने वाले पक्षी निर्भय होकर वहाँ पर आ सकें। उपर्युक्त पंक्ति में 'वृक्ष' शब्द से परे 'कन्' प्रत्यय का प्रयोग पौधों के अतिशय छोटा होने का भाव बताने के लिए है।

प्रातःकाल से लेकर अपराह्न तक मृग आश्रम में विद्यमान पर्णशालाओं के आँगन में बिखरे नीवार नामक धान को खाते थे। पेट भर कर वे वृक्षों की छाया में बैठ जाते थे और धीरे-धीरे रोमन्थ अर्थात् जुगाली का अभ्यास करते थे। रोमन्थ की क्रिया के द्वारा ही पशु अपने द्वारा एक साथ भक्षित भक्ष्य पदार्थ को पचाने का कार्य करते हैं।

''पुनानं पवनोद्धूतैः धूमैराहुतिगन्धिभिः'' इस वाक्य के द्वारा उस विशेषता को रेखांकित किया गया है, जो केवल आश्रम में ही मिलती है। गाँवों में भी चूल्हों से धुआँ निकलता है परन्तु वह न तो सुगन्धित होता है और न दूसरों को पवित्र करने में समर्थ, जबकि सायं आश्रम में हवन में से उठता हुआ सुगन्धित धुआँ दूसरों को पवित्र कर रहा था।

इस प्रकार से आश्रम में पहुँचने पर प्रजापालक, नीति-निपुण तथा सर्वथा समर्थ राजा और रानी का सभ्य और जितेन्द्रिय मुनियों ने आगे बढ़कर हार्दिक अभिनन्दन और स्वागत किया।

➨ 'वशिष्ठ-दिलीप-सम्वाद'

'रघुवंश' के प्रथम सर्ग में जब राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा आश्रम में पहुँचे तो अन्य सारे ऋषियों से तो उनका मिलन हो गया परन्तु वशिष्ठ के सन्ध्याविधि में व्यस्त होने के कारण उनके दर्शन नहीं हो पाए। इसीलिए कालिदास ने संकेत किया–

''विधेः सायंतनस्यान्ते स ददर्श तपोनिधिम्।''

अर्थात् सायंकाल सन्ध्याविधि के पूर्ण हो जाने पर राजा ने तपोनिधि वशिष्ठ के दर्शन किए। वशिष्ठ के पीछे उनकी धर्मपत्नी अरुन्धती बैठी हुई वैसी ही शोभायमान हो रही थीं, जैसे अग्निदेवता के पीछे बैठी हुई स्वाहादेवी सुशोभित होती हैं। अग्नि की उपमा देने से महर्षि वशिष्ठ की अतितेजस्विता प्रकट होती है।

राजा और रानी– दोनों ने अतिविनम्रतापूर्वक वशिष्ठ और अरुधन्ती के चरणों में सादर प्रणाम किया और उन दोनों ने भी बड़े आनन्द और प्रेमपूर्वक उन दोनों का यथासम्भव सत्कार किया। आतिथ्य को स्वीकारने के फलस्वरूप जब दिलीप और सुदक्षिणा की रथयात्रा से उत्पन्न थकान शान्ति हो गई, तब–

'' पप्रच्छ कुशलं राज्ये राज्याश्रममुनिं मुनिः।''

अर्थात् मुनि वशिष्ठ ने उस साम्राज्य रूपी आश्रम के मुनि दिलीप से राज्य की कुशलता के विषय में पूछा। राज्याश्रम का मुनि बताया जाना दिलीप की त्यागशीलता और उदारता का परिचायक है। क्षत्रिय होते हुए भी दिलीप ब्राह्मण की तरह आचरण करते थे, इसीलिए उनसे कुशलता का प्रश्न पूछा गया।

महर्षि वशिष्ठ यों तो सभी वेदों के विज्ञ विद्वान् थे परन्तु अथर्ववेद की वे साक्षात् निधि थे। विषय-विस्तार और वैविध्य की दृष्टि से अथर्ववेद का अपना विशिष्ट महत्त्व है। राजा ने कहा कि हे ऋषि! मेरे राज्य के सातों अंगों में निश्चित रूप से कुशल और मंगल है और इसका मूल कारण है आपकी अनुकम्पा और आशीर्वाद। स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोष, राष्ट्र, दुर्ग, बल– ये राज्यांग होते हैं। महर्षि ने ही अपने प्रभाव से–

''दैवीनां मानुषीणां च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्॥''

अर्थात् दैवीय तथा मानुषी– दोनों प्रकार की आपत्तियों का हरण कर लिया है। अतः कुशलता तो होनी ही है। अग्नि, जल, रोग, अकाल, मरण– ये पाँच दैवीय आपत्तियाँ कही जाती हैं तथा मन्त्री, चोर, शत्रु, पक्षपाती, लोभी स्वभाव– ये पाँच मानुषी विपत्तियाँ मानी जाती हैं। महर्षि वशिष्ठ अपने मन्त्रों के सात्त्विक प्रभाव से इतनी दूर से ही सारी बाधाओं को शान्त कर देते हैं। इसलिए राजा कहता है कि मेरे शरों को तो लक्ष्यभेद करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता।

ऋषि वशिष्ठ आश्रम में नित्य और निरन्तर हवन करते हैं। हवन के धुएँ से बादलों का निर्माण होता है। बादलों से भरपूर वर्षा होती है। वर्षा के कारण पूरी खेती होती है। अतः अन्नादि का अभाव तो कभी हो ही नहीं सकता।

हे महर्षि! आपके अतिशय ब्रह्मतेज के कारण मेरी सारी प्रजायें आतंकरहित और निरोग रहती हैं। इसलिए एक आदर्श

मानवायु अर्थात् शतवर्ष पर्यन्त स्वस्थ जीवन जीती है। इस विषय का पटाक्षेप करते हुए सम्राट दिलीप कहते हैं कि–

''सानुबन्धाः कथं नु स्युः सम्पदो मे निरापदः।''

अर्थात् हे ब्रह्मा के साक्षात् पुत्र! आप जैसे गुरु जब मेरे और राज्य के विषय में इतनी चिन्ता करते हैं तो मेरी सारी सम्पत्तियाँ तो निरापद रहनी ही हैं। आप को गुरु रूप में पाकर मैं और मेरा सूर्यवंश निश्चित ही कृतकृत्य है।

➨ दिलीप द्वारा नन्दिनी की सेवा

संस्कृत में धातु और प्रत्यय मिलकर एक निश्चित शब्द रूप का निर्माण करते हैं। यदि उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन करना हो तो पूर्व में उपसर्ग का योग होता है। इसी परम्परा में नन्दि धातु से ल्युु प्रत्यय का योग होने पर 'नन्दन' शब्द बनता है और स्त्रीलिङ् की विवक्षा में ईदन्त 'नन्दिनी' रूप होता है। इसका अर्थ है–

''नन्दयति या सेति नन्दिनी।''

अर्थात् जो आनन्द प्रदान करती है, वह 'नन्दिनी' कही जाती है। अनेकानेक प्रकार के पशुओं में गाय सर्वाधिक पवित्र होती है। इसके विभिन्न शरीरावयवों में विभिन्न मंगलकारी देवताओं का निवास होता है।

महर्षि वशिष्ठ राजा दिलीप की समस्या के निवारण के उपायरूप में नन्दिनी की सेवा का निर्देश दे ही रहे थे कि उसी समय नन्दिनी वन से लौटकर आश्रम में आई। उसकी कतिपय विशेषतायें इस प्रकार से थीं–

''ललाटोदयमाभुग्नं पल्लवस्निग्धपाटला।
बिभ्रती श्वेतरोमांकं सन्ध्येव शशिनं नवम्॥''

अर्थात् नन्दिनी गाय कोंपल के समान कतिपय लाल रंग वाली थी। कोंपल का रंग बड़ा ही आकर्षक और आनन्दित करने वाला होता है। उसके ललाट पर श्वेत रंग का कुछ-कुछ टेढ़ा टीका या तिलक विद्यमान था। इस तिलक के कारण वह ऐसी लग रही थी मानो द्वितीया के चन्द्रमा को टीके के रूप में अपने मस्तक पर धारण किए हुए लाल रंग की सन्ध्या होवे। टीके की उपमा चन्द्रमा से और नन्दिनी की सन्ध्या से दी गई है।

दिन भर जंगल में चरकर सायं नन्दिनी जब आश्रम में लौटी तो सन्तान के प्रति स्नेहाधिक्य के कारण उसके थनों से दूध स्वयं ही टपकने लगा। दूध कुछ-कुछ गर्म और अत्यन्त गुणकारी था। यों भी अन्य पशुओं की तुलना में गाय का दूध अधिक गुणकारी और पौष्टिक माना जाता है। उस टपकते हुए दूध से पृथ्वी पर धारा का निशान बनता जा रहा था। पवित्रता में वह दूध यज्ञान्त में स्नानार्थ काम में लिए जाने वाले दूध से भी अधिक पवित्र था।

रात-दिन के चौबीस घन्टों के समय में गोधूलि वेला सर्वाधिक पवित्र मानी जाती है क्योंकि इस समय गायों के खुरों से उड़ाई हुई धूल वातावरण को शुद्ध करती है। वैवाहिक आयोजनों में भी इस वेला को अत्यन्त मंगलकारी माना जाता है। नन्दिनी गाय के खुरों से उड़ाई गई धूल राजा दिलीप के शरीर को निकट से स्पर्श कर रही थी और इसके प्रभाव से–

''तीर्थाभिषेकजां शुद्धिमादधाना महीक्षितः।''

अर्थात् राजा दिलीप उतनी ही शुद्धता और पवित्रता को प्राप्त कर रहे थे, जितनी कि तीर्थस्थान पर पवित्रजल से स्नान करने पर प्राप्त हुआ करती है।

ये सारे शुभशकुन और कल्याणकारी क्रियायें देखकर महर्षि वशिष्ठ को आत्मिक प्रसन्नता और शान्ति का अनुभव हुआ क्योंकि उनकी कही हुई बात भविष्य में सफल होती हुई लग रही थी। अपने मनोभावों को यजमान दिलीप के लिए प्रोत्साहन वचनों के रूप में उपस्थित करते हुए कहने लगे–

''अदूरवर्तिनीं सिद्धिं राजन् विगणयात्मनः।''

अर्थात् हे राजन्! नाम लेते ही यह कल्याणकारी गाय आश्रम में आ गई। यह शुभ शकुन है। अपनी मनोरथ सिद्धि को अपने निकट आया हुआ ही समझिए।

वशिष्ठ का निर्देश–राजा दिलीप को नन्दिनी गाय की सेवा इस प्रकार से करनी चाहिए कि अल्पकाल में ही प्रसन्न होकर वह गाय राजा के लिए अभीष्ट वरदान प्रदान कर देवे। इस विषय में प्रथम निर्देश देते हुए वशिष्ठ कहते हैं कि जिस प्रकार निरन्तर

अभ्यास से कठिनतम विद्या को भी अधिगम किया जाता है, उसी प्रकार से आप भी बिना थकान और आलस्य के एक ग्वाले की तरह इस गाय का लगातार अनुगमन करें। इसकी सेवा करने के दौरान जैसे यह वन में उपलब्ध घास आदि को ही खाएगी, वैसे ही आपको भी वन में प्राप्त होने वाले कन्द, मूल, फलादि ही खाना होगा। साधक और साधित में भेद नहीं होना चाहिए।

मुख्य रूप से चार कार्यों को करते समय राजा दिलीप के द्वारा संधारणीय सावधानियों की ओर संकेत करते हुए कहा गया है–

''प्रस्थितायां प्रतिष्ठेथाः स्थितायां स्थितिमाचरेः।
निषण्णायां निषीदास्यां पीताम्भसि पिबेरपः॥''

अर्थात् हे राजन्! आप अपनी इच्छानुसार नन्दिनी गाय को चलाने का प्रयास मत कीजिए। अपितु आप स्वयम् अपनी दिनचर्या को इस गाय की इच्छानुसार ही ढाल लेवें। जब यह गाय चले, तभी आप भी इसके पीछे-पीछे इसी की गति से ताल बैठाकर चलें। जब नन्दिनी खड़ी हो जावे, तो आप भी थोड़ी दूरी बनाकर खड़े हो जावें। जब थक कर के यह गाय आराम करने के लिए बैठ जावे तो आप भी थोड़ा सुस्ताने के लिए बैठ सकते हैं। जब नन्दिनी गाय प्यास लगने पर पानी पीवे, तो ही आप भी पानी पीने का प्रयास करें। सारांश में आपको इस नन्दिनी गाय की सेवा करते समय उसी प्रकार से आचरण करना है, जिस प्रकार से हमारे शरीर की छाया हमारे शरीर के अनुसार ही आचरण करती है। शरीर के हिलने पर छाया भी हिलती है। दौड़ने पर दौड़ती है। बैठने पर बैठती है।

सेवा का यह तन्मय भाव हे राजन्! केवल आपको ही नहीं रखना है अपितु महारानी सुदक्षिणा को भी उतना ही और उसी प्रभाव से रखना है। क्योंकि सन्तानप्राप्ति अकेले आपको नहीं, अपितु आप दोनों को होनी है। शुद्ध अन्तःकरण से पवित्र और भक्तिभाव को धारण करते हुए सुदक्षिणा प्रातःकाल तपोवन की सीमा तक नन्दिनी के पीछे-पीछे उसे विदा करने के लिए जावे और सायंकाल भी वापस उसी आश्रम सीमा पर जाकर गाय का स्वागत और अभिनन्दन करे। इस प्रकार से नन्दिनी की सेवा वन में आप करेंगे और तपोवन में सुदक्षिणा करेगी।

इस प्रकार से नन्दिनी की सेवा करने की अवधि निर्धारित नहीं है। क्योंकि कार्य को प्रारम्भ करने के बाद उसका पूरा हो जाना ही उसकी निर्धारित समयसीमा होती है। महर्षि कहते हैं–

''इत्याप्रसादादस्यास्त्वं परिचर्यापरो भव।
अविघ्नमस्तु ते स्थेयाः पितेव धुरि पुत्रिणाम्॥''

अर्थात् जब तक यह गाय प्रसन्न होकर के आप दोनों को मनोरथसिद्धि का वरदान नहीं देती है, तब तक आप दोनों को इसकी सेवा में इसी प्रकार लगे रहना है। इसका आशीर्वाद मिल जाने पर निर्विघ्न रूप से आप भी उसी प्रकार से श्रेष्ठतम सन्तान को प्राप्त करोगे, जिस प्रकार से आपके पिता ने अत्युत्तम सन्तान के रूप में आपको प्राप्त किया है। राजा दिलीप ने सपत्नीक नतमस्तक होकर महर्षि वशिष्ठ के आदेश को स्वीकार किया।

●●

रघुवंश महाकाव्यम्

(द्वितीय सर्ग) का सारांश

मनु के वंश में उत्पन्न राजा दिलीप कुलगुरु वशिष्ठ की आज्ञानुसार सन्तान-प्राप्ति की अभिलाषा से कामधेनु की पुत्री नन्दिनी गाय की सेवा में प्रवृत्त हुए।

प्रातःकाल होते ही जब रानी सुदक्षिणा नन्दिनी गाय की पूजा कर चुकीं और उसका बछड़ा दूध पी चुका, तब राजा दिलीप ने नन्दिनी को जङ्गल में चरने के लिए छोड़ दिया और स्वयं उसके पीछे-पीछे चल पड़े। कुछ दूर तो रानी सुदक्षिणा एवं अनुचर साथ गये, पर बाद में राजा ने उन्हें लौटा दिया और स्वयं नन्दिनी को स्वादिष्ट घास खिलाकर, उसको खुजलाकर, उस पर से मक्खियाँ उड़ाकर उसकी सेवा में लग गया। जब गाय खड़ी होती थी तब राजा भी खड़ा होता था, जब वह बैठती थी तो राजा भी बैठता था और जब वह जल पीती थी तो राजा भी जल पीने का इच्छुक हो जाता था। इस प्रकार छाया की तरह गाय के पीछे-पीछे चलता रहता था।

राजा को गाय की सेवा करते-करते इक्कीस दिन बीत गये। तब गाय ने राजा की परीक्षा लेनी चाही कि देखूँ ये केवल स्वार्थ-भाव से मेरी सेवा करते हैं या सच्चे भाव से। ऐसा विचार करके वह बाईसवें दिन जङ्गल में चरते-चरते हिमालय की एक गुफा में घुस गयी। उसके घुसते ही उस पर एक सिंह टूट पड़ा। राजा ने उसकी जान बचाने के लिए ज्यों ही तरकश से बाण निकालना चाहा, त्योंही उनकी उँगलियाँ बाणों में चिपक गयीं। तब सिंह ने मनुष्य की बोली में कहा–"राजा, मैं कुम्भोदर नाम का शङ्कर का सेवक हूँ। इस सामनेवाले देवदारु के वृक्ष को पार्वती जी ने लगाकर बड़ा किया है। एक बार एक हाथी ने इसकी छाल रगड़ दी। इस पर पार्वती जी को बड़ा दुःख हुआ, अतः शङ्कर जी ने मुझे इसकी रखवाली करने के लिए नियुक्त किया है और कहा है कि जो भी जानवर यहाँ आवे उसे तुम मारकर खा जाओ। इसलिए तुम मुझे मारने की कोशिश मत करो। तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ जायगा।" राजा ने कहा–"तुम अपनी भूख मिटाने के लिए मुझे खा डालो, लेकिन इस गाय को छोड़ दो।" सिंह ने कहा–"राजन्! तुम बड़े मूर्ख मालूम होते हो क्योंकि एक छोटी-सी गाय के लिए अपना प्राण गँवा रहे हो, अपना सारा राज्य चौपट करना चाहते हो। यदि जीवित रहोगे तो अनेक गायों की रक्षा कर सकते हो।" राजा ने एक न सुनी। सिंह राजा को खाने के लिए तैयार हो गया और राजा की उँगलियाँ छूट गयीं। ज्योंही वे सिंह के सामने अपने को समर्पण करने के लिए गिरे, त्योंही देवताओं ने उनके ऊपर फूलों की वर्षा की और उनको मधुर वचन सुनायी पड़े। "उठो बेटा! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। वर माँगो!" राजा ने सिर उठाकर देखा तो सिंह गायब था। तब नन्दिनी ने मनुष्य की बोली में कहा–"राजन्! मैं तुम्हारी परीक्षा ले रही थी। अब मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम मनचाहा वरदान माँगो।" राजा ने कहा–"मेरे ऐसा पुत्र हो जो मेरे वंश को चलानेवाला हो।" नन्दिनी ने कहा–"तुम्हारी मनःकामना पूरी होगी।" राजा उसे लेकर आश्रम में चले आये। वशिष्ठ जी ने गो-सेवा का व्रत पूरा हुआ, जानकर राजा व रानी को आशीर्वाद दिया और उन्हें अयोध्या के लिए विदा किया। अयोध्या में आने पर रानी सुदक्षिणा गर्भवती हुई।

महाकविकालिदासविरचितम्

रघुवंश महाकाव्यम्

द्वितीयः सर्गः

➡ **प्रसङ्ग**–प्रस्तुत श्लोक में गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से राजा दिलीप का नन्दिनी की सेवा में प्रवृत्त होने का वर्णन किया गया है–

अथ प्रजानामधिपः प्रभाते
जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्।
वनाय पीतप्रतिबद्धवत्सां
यशोधनो धेनुमृषेर्मुमोच॥1॥

अन्वय–अथ प्रभाते यशोधनः प्रजानाम् अधिपः जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां पीतप्रतिबद्धवत्साम् ऋषेः धेनुं वनायं मुमोच।

हिन्दी व्याख्या–प्रातःकाल प्रजा के स्वामी यशोधन (राजा दिलीप) ने मुनि की गाय को, जब उसका बछड़ा दूध पीने के बाद बाँध दिया गया और (पत्नी) सुदक्षिणा गन्ध और माला से उसकी पूजा कर चुकी, वन में चरने के लिए छोड़ दिया।

संस्कृत व्याख्या–अथ–अनन्तरं, **प्रभाते**–प्रातःकाले, **यशोधनः**–कीर्तिधनः, **प्रजानां**–लोकानाम्, **अधिपः**–स्वामी, **जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्यां**–जायया सुदक्षिणया प्रतिग्राहिते स्वीकारिते गन्धमाल्ये चन्दनमाले यया सा ताम्, **पीतप्रतिबद्धवत्सां**–पीतः पीतवानित्यर्थः प्रतिबद्धः बन्धनं नीतः वत्सः यस्याः सा ताम्, **ऋषेः**–मुनेः वशिष्ठस्य, **धेनुं**–गां नन्दिनीमित्यर्थः, **वनाय**–काननाय, **मुमोच**–मुक्तवान्।

संस्कृत भावार्थ–प्रभातसमये नृपमहिषी मालाचन्दनादिभिः नन्दिनीं पूजितवती। वत्सं च प्रथमम् स्तन्यम् पाययित्वा पश्चात् बबन्ध। ततश्च यशस्वी स राजा दिलीपः वने स्वच्छन्दगमनाय तां नन्दिनीं मुक्तवान् इति भावः।

शब्दार्थ–अथ–तब, रात्रि बीतने पर। **प्रभाते**–सुबह। **यशोधनः**–यश ही है धन जिसका अर्थात् यशस्वी। यशः एव धनं यस्य सः यशोधनः बहुव्रीहि समास। यह प्रजानामधिपः का विशेषण है। **प्रजानाम्**–प्रजाओं का। **अधिपः**–स्वामी। **जायाप्रतिग्राहितगन्धमाल्याम्**–सुदक्षिणा के द्वारा गन्ध और माला स्वीकार करवाया गया है जिससे (उस) गाय को अर्थात् रानी के द्वारा दी हुई गन्ध और माल्य को स्वीकार कर लिया है जिसने। **पीतप्रतिबद्धवत्साम्**–दूध पी चुकने के बाद जिसका बछड़ा बाँध दिया गया (उस गाय को)। **वत्स**–बछड़ा-वत्सः। **ऋषेः**–मुनि (वशिष्ठ) की। **धेनुम्**–गाय को-गाम्। **वनाय**–वन में चरने के वास्ते। **मुमोच**–छोड़ा।

➡ **प्रसङ्ग**–नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण करती हुई सुदक्षिणा का वर्णन है–

तस्याः खुरन्यासपवित्रपांसु-
मपांसुलानां धुरि कीर्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वरधर्मपत्नी
श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्॥2॥

अन्वय–अपांसुलानाम् धुरि कीर्तनीया मनुष्येश्वरधर्मपत्नी खुरन्यासपवित्र पांसुम् तस्याः मार्गं श्रुतेः अर्थं स्मृतिः इव अन्वगच्छत्।

हिन्दी व्याख्या–पतिव्रताओं में श्रेष्ठ राजा की धर्मपत्नी सुदक्षिणा ने गाय के मार्ग का, जिस मार्ग की धूल (नन्दिनी के) खुर के स्पर्श से पवित्र हो गयी थी, उसी प्रकार अनुसरण किया, जैसे श्रुति के अर्थ के अनुसार स्मृति चलती है।

संस्कृत व्याख्या–अपांसुलानां–पतिव्रतानां, **धुरि**–अग्रे, **कीर्तनीया**–परिगणनीया, **मनुष्येश्वरधर्मपत्नी**–राजमहिषी सुदक्षिणा, **खुरन्यासपवित्रपांसुं**–खुरन्यासैः पादनिक्षेपैः पवित्राः पूताः पांसवो रजांसि यस्य तं, **तस्याः**–नन्दिन्याः, **मार्ग**–पन्थानं, **श्रुतेः**–वेदस्य, **अर्थं**–प्रतिपाद्यं, **स्मृतिः**–मन्वादिवाक्यम्, **इव**–तद्वत्, **अन्वगच्छत्**–अनुसृतवती।

संस्कृत भावार्थ–पतिव्रतासु श्रेष्ठा नृपस्य दिलीपस्य पत्नी राज्ञी सुदक्षिणा तस्याः धेनोः खुरप्रक्षेपपूतरजस्कम् पन्थानम् तथा एव अनुससार यथा श्रुतेः अर्थम् स्मृतिः अनुसरति। तथा स्मृतिः श्रुतिक्षुण्णमेवार्थमनुसरति तथा साऽपि गोखुरक्षुण्णमेव अनुससार।

शब्दार्थ–अपांसुलानाम् धुरि कीर्तनीया–पतिव्रताओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जानेवाली। **मनुष्येश्वरधर्मपत्नी**–मनुष्यों के ईश्वर की धर्मपत्नी अर्थात् रानी। **खुरन्यासपवित्रपांसुम्**–खुरों के (रखने) से पवित्र हो गयी है धूलि जिसकी, ऐसा मार्ग। **अन्वगच्छत्**–अनुसरण किया।

विशेष–श्रुति जो कुछ कहती है स्मृतियाँ ठीक-ठीक उसका अनुसरण करती हैं। उसी प्रकार रानी ने भी ठीक-ठीक गाय के चले हुए मार्ग का अनुसरण किया।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा के द्वारा सुदक्षिणा को लौटा देने का वर्णन है–

निवर्त्य राजा दयितां दयालु–
स्तां सौरभेयीं सुरभिर्यशोभिः।
पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां
जुगोप गोरूपधरामिवोर्वीम्॥3॥

अन्वय– यशोभिः सुरभिः दयालुः राजा तां दयिताम् निवर्त्य पयोधरीभूत-चतुःसमुद्रां गोरूपधराम् उर्वीम् इव तां सौरभेयीं जुगोप।

हिन्दी व्याख्या – यश से सुन्दर दयालु राजा ने नन्दिनी के मार्ग का अनुसरण करती हुई प्रिया (सुदक्षिणा) को लौटाकर चारों समुद्र ही हैं स्तन जिसके ऐसी सुरभि की पुत्री (नन्दिनी) की गऊ रूप में पृथ्वी के समान रक्षा की।

संस्कृत व्याख्या– यशोभिः– कीर्तिभिः, **सुरभिः**–मनोज्ञः, **दयालुः**–कारुणिकः, **राजा**–दिलीपः, **ताम्**– अनुगच्छन्तीं, **दयितां**–प्रियां भार्या, **निवर्त्य**–परावर्त्य, **पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां**–स्तनीभूतचतुःसागरां, **गोरूपधरां**–धेनुस्वरूपधारिणीम्, **उर्वीम्** – पृथ्वीम्, इव, तां, **सौरभेयीं**–नन्दिनीं, **जुगोप**–ररक्ष।

संस्कृत भावार्थ–परमदयालुः राजा प्रियतमां तां सुदक्षिणाम् सुदूरगमनात् निवर्तयामास स्वयं च तां नन्दिनीम् सर्वभावेन गोप्तुमारेभे। मन्ये नन्दिनीरूपेण प्राप्तां चतुर्भिः जलधिभिः युक्ताम् साक्षात् धराम् स ररक्ष इति।

शब्दार्थ – यशोभिः - कीर्ति से। **सुरभिः** - सुन्दर। यह राजा का विशेषण है। **दयिताम्** - प्रिया को। **निवर्त्य** - लौटाकर। **पयोधरीभूतचतुःसमुद्राम्** - यह सौरभेयीं तथा उर्वीम् दोनों का विशेषण है। गाय के पक्ष में इसका अर्थ है, जिसके दूध से चारों समुद्र भी तिरस्कृत हो गये थे यानी जिसके स्तन में इतना दूध था कि चारों समुद्रों में उतना पानी भी न रहा होगा। चारों समुद्र ही हैं स्तन जिसके ऐसी पृथ्वी। **गोरूपधराम्** - गऊरूप में पृथ्वी। **उर्वीम्** - पृथ्वी को। **सौरभेयीम्** - कामधेनु की कन्या नन्दिनी को। **जुगोप** - रक्षा की।

➡ **प्रसङ्ग**– राजा के द्वारा अनुचर वर्ग को लौटा देने का वर्णन है–

व्रताय तेनानुचरेण धेनो-
र्न्यषेधि शेषोऽप्यनुयायिवर्गः।
न चान्यतस्तस्य शरीररक्षा
स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः ॥4॥

अन्वय– व्रताय धेनोः अनुचरेण तेन शेषोऽपि अनुयायिवर्गः न्यषेधि। तस्य शरीररक्षा च अन्यतः न। हि मनोः प्रसूतिः स्ववीर्यगुप्ता।

हिन्दी व्याख्या – व्रत के लिए (न कि जीविकोपार्जन के लिए) जो राजा गाय का अनुचर बना था, उसने शेष सभी अनुचरों को (साथ चलने से) मना कर दिया। क्योंकि अपनी शरीर-रक्षा के वास्ते उसे दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता न थी।

कारण कि मनु की सन्तान अपने ही बल से रक्षित होती है (अपने ही पराक्रम से अपनी रक्षा करती है)।

संस्कृत व्याख्या– व्रताय–व्रतपालनार्थं, **धेनोः**–गोःनन्दिन्या इत्यर्थः, **अनुचरेण**–सेवकेन, **तेन**–दिलीपेन, **शेषोऽपि**–अवशिष्टोऽपि, **अनुयायिवर्गः**–अनुचरसमुदायः, **न्यषेधि**–निवर्तितः, **तस्य**–राज्ञः, **शरीररक्षा**– देहसंरक्षणं, **च अन्यतः**–पुरुषान्तरात्, **न**–नहि (अभूयत)। **हि**–यतः, **मनोः**–महीक्षितामाद्यस्य, **प्रसूतिः**–सन्ततिः, **स्ववीर्यगुप्ता**– स्वपराक्रमेण रक्षिता (भवति)।

संस्कृत भावार्थ– व्रतपालनार्थम् अरण्ये गामनुगच्छन् नृपतिः प्राक् महिषीम् निवर्तयामास पश्चात् अन्यानपि सेवकान् अनुचलनात् निवारितवान्। एकाकिनोऽपि तस्य दिलीपस्य निजरक्षणविधो कापि चिन्ता न बभूव यतः मनोः कुलधराः नृपाः स्वबाहुबलेनैव सर्वत्र निजरक्षां कुर्वन्तीति भावः।

शब्दार्थ – व्रताय - व्रत के वास्ते, राजा ने गाय की सेवा का जो व्रत धारण किया था, वह जीविका के लिए नहीं था बल्कि सन्तान-प्राप्ति के लिए था। **अनुचरेण** - सेवक से। **शेषोऽपि** - शेष बचे हुए भी। सुदक्षिणा को तो राजा ने पहले ही लौटा दिया था। उसके बाद जो कुछ भी नौकर-चाकर साथ-साथ चल रहे थे उन्हें भी राजा ने लौटा दिया। **न्यषेधि** - मना कर दिये गये अर्थात् राजा ने अपने साथ चलने से उन्हें रोक दिया। **अनुयायिवर्गः** - नौकर-चाकर। **शरीर-रक्षा** - शरीर की रक्षा। **अन्यतः** - दूसरों से। पुरुषान्तरात्, अन्येभ्यः। राजा को अपनी शरीर-रक्षा के लिए अन्य किसी की आवश्यकता न थी। **यतः** - क्योंकि। **मनोःप्रसूतिः** - मनु की सन्तान। **स्ववीर्यगुप्ता** - अपने ही पराक्रम से रक्षित। राजा ने अन्य नौकरों को भी साथ चलने से इसलिए रोक दिया कि उनकी रक्षा के वास्ते अन्य लोगों की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मनु के वंशवाले अपनी रक्षा स्वयं कर लेते हैं।

➡ **प्रसङ्ग**–सम्राट् की गो-सेवा का वर्णन किया गया है–

आस्वादवद्भिः कवलैस्तृणानां
कण्डूयनैर्दंशनिवारणैश्च।
अव्याहतैः स्वैरगतैः स तस्याः
सम्राट् समाराधनतत्परोऽभूत् ॥5॥

अन्वय–सः सम्राट् आस्वादवद्भिः तृणानां कवलैः कण्डूयनैः दर्शनिवारणैः अव्याहतैः स्वैरगतैः तस्याः समाराधनतत्परः अभूत्।

हिन्दी व्याख्या – वह राजा गाय को घास का स्वादिष्ट कौर खिलाकर, उसको खुजलाकर और मक्खियों को उड़ाकर तथा उसे (गाय को) बिना रोक-टोक स्वच्छन्द विचरण करने देकर उसकी सेवा में लग गया।

संस्कृत व्याख्या– सः–प्रसिद्धः, **सम्राट्**–सार्वभौमो राजा दिलीपः, **आस्वादवद्भिः**–स्वादयुक्तैः, **तृणानां**–शष्पाणां, **कवलैः**–ग्रासैः, **कण्डूयनैः**–खर्जनैः **दंशनिवारणैः**–वनमक्षिकादूरीकरणैः, **अव्याहतैः**–बाधारहितैः, **स्वैरगतैः**–स्वच्छन्दगमनैः, **तस्याः**–नन्दियाः, **समाराधनतत्परः**–शुश्रूषासक्तः, **अभूत्**–जातः।

संस्कृत भावार्थ– तस्याः भोजनार्थं स्वादयुक्तं तृणं प्रयच्छन् तस्याः, शरीरखर्जनम् अपनयन् तथा पीडाकरान् दंशमशकादीन् निवारयन् तस्याः स्वेच्छाविहारं चानुवर्तमानः स सर्वप्रकारेण नन्दिन्याः सेवामकरोत्।

शब्दार्थ – सम्राट् - राजा, नृपः। जो राजसूय यज्ञ कर चुका हो, राजमण्डल का प्रभु हो तथा राजाओं का शासक हो उसे सम्राट् कहते हैं। **आस्वादवद्भिः** - स्वादिष्ट। **कवलैः** - कौर। **तृणानाम्** - घास का। राजा गाय को स्वादिष्ट घास खिलाते थे। **कण्डूयनैः** - खुजलाकर। **दंशनिवारणैः** - मक्खियों तथा मच्छरों को उड़ाकर। **अव्याहतैः** - बे-रोक-टोक। **स्वैरगतैः** - स्वतन्त्रतापूर्वक जाने देकर। **समाराधनतत्परोऽभूत्** - सेवा में लग गये। गाय जहाँ जाती थी राजा बे-रोक-टोक उसे वहाँ जाने देते थे। इस (पूर्वोक्त) प्रकार से राजा गाय की सेवा में लग गये।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा दिलीप की गो-सेवा का ही वर्णन है–

स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां
निषेदुषीमासनबन्धधीरः।

जलाभिलाषी जलमाददानां
छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥6॥

अन्वय–स्थिताम् भूपतिः स्थितः प्रयाताम् उच्चलितः निषेदुषीम् आसनबन्धधीरः जलम् आददानाम् जलाभिलाषी तां छाया इव अन्वगच्छत्।

हिन्दी व्याख्या – जब गाय खड़ी होती थी तब राजा भी खड़ा हो जाता था, जब गाय चलती थी तब राजा भी चलने लगता था और जब वह बैठती थी तो राजा भी आसन लगाकर बैठ जाता था। जब वह जल पीती थी तो राजा भी जल पीने का इच्छुक हो जाता था। इस प्रकार राजा परछाईं की तरह उस गाय के पीछे-पीछे बना रहता था।

संस्कृत व्याख्या– स्थिताम्–ऊर्ध्वावस्थितां (दृष्ट्वा), **भूपतिः**–राजा, **स्थितः–ऊर्ध्वावस्थितः, प्रयातां**–प्रस्थितां (दृष्ट्वा), **उच्चलितः**–प्रस्थितः (सन्), **निषेदुषीम्**–उपविष्टाम्, **आसनबन्धधीरः**–आसनबन्धे उपवेशने धीरः स्थितः उपविष्टः सन्नित्यर्थः, **जल**–पानीयम्, **आददानां**–गृहणन्तीं (दृष्ट्वा), **जलाभिलाषी**–जलेच्छुकः पिबन्नित्यर्थः, **तां**– नन्दिनीं, **छाया इव**–प्रतिबिम्ब इव, **अन्वगच्छत्**–अनुसृतवान्।

संस्कृत भावार्थ– नन्दिनी यदा चलितुमारेभे तदा दिलीपोऽपि चचाल, यदा सा गमनात् विरराम, नृपोऽपि तदा विरराम, सा यदा निषसाद तदा राजापि निषसाद, सा प्रथमं जलं पपौ नृपः पश्चात् सलिलमपिबत्। इत्यं सर्वप्रकारेण राजा तां छाया इव अनुजगाम।

शब्दार्थ – स्थिताम् - खड़ी हुई को। **स्थितः** - खड़ा हो गया, यह भूपतिः का विशेषण है। **उच्चलितः** - चलता हुआ। **प्रयाताम्** - चलती हुई को। **निषेदुषीम्** - बैठी हुई को। **आसनबन्धधीरः** - धीरतापूर्वक आसन ग्रहणकर बैठ जाते थे। **जलम् आददानाम्** - जल पीती हुई को। जब गाय पानी पीती थी, राजा भी पानी पीते थे। **जलाभिलाषी** - प्यासा। **छाया** - परछाईं। **इव** - तरह। **अन्वगच्छत्** - पीछे-पीछे गया। जिस प्रकार छाया हर समय मनुष्य के साथ रहती है, उसी प्रकार राजा भी हर समय गाय के पीछे-पीछे रहते थे और दत्तचित्त होकर उसकी सेवा करते थे।

➡ **प्रसङ्ग**– राजा दिलीप की तत्कालीन शोभा वर्णित है–

स न्यस्तचिह्नामपि राजलक्ष्मीं
तेजोविशेषानुमितां दधानः।
आसीदनाविष्कृतदानराजि-
रन्तर्मदावस्थ इव द्विपेन्द्रः ॥7॥

अन्वय–न्यस्तचिह्नामपि तेजोविशेषानुमिताम् राजलक्ष्मीम् दधानः सः अनाविष्कृतदानराजिः अन्तर्मदावस्थः द्विपेन्द्रः इव आसीत्।

हिन्दी व्याख्या – (जङ्गल में गाय की सेवा के लिए) जाते समय राजा ने राजलक्ष्मी के सारे चिह्नों (छत्र, चामर आदि) को त्याग दिया था, फिर भी अपने विशेष तेज के कारण वह छिप न सका (सबको यह मालूम हो ही जाता था कि यही राजा दिलीप हैं)। इसी प्रकार राजा उस समय उस मदवाले हाथी की तरह प्रतीत होता था, जिसकी मदरेखा बाहर न निकली हो बल्कि अन्दर ही छिपी हो।

संस्कृत व्याख्या– न्यस्तचिह्नामपि–न्यस्तानि परिहतानि चिह्नानि छत्र-चामरादीनि यस्याः तां, **तेजोविशेषानुमितां**–तेजोविशेषेण प्रभावातिशयेन अनुमिताम् ऊहितां, **राजलक्ष्मीं**–राजश्रियं, **दधानः**–धारयन्, **सः**–राजा दिलीपः, **अनाविष्कृतदानराजिः**–बहिरप्रकटीकृतमदरेखः, **अन्तर्मदावस्थः**–अन्तर्गता मदस्य अवस्था दशा यस्य तादृशः, **द्विपेन्द्रः**–गजराजः, **इव**–यथा, **आसीत्**–जातः।

संस्कृत भावार्थ– गोसेवायै वनं गच्छता दिलीपेन छत्रचामरादीनि त्यक्तानि तथापि तस्य प्रभावातिशयेन तथा प्रभावशालिना मूर्तिविशेषेणैव जनः तस्य राजश्रियमनुमातुं शशाक अर्थात् राजा एव अयं भवेत् इति सर्वेःअनुमितम्। तस्मिन् काले स राजा बहिरप्रकटीकृतमदरेखः हस्ती इव आसीत्।

शब्दार्थ – न्यस्तचिह्नामपि - राजचिह्नों से रहित। राजा का चिह्न छत्र और चामर होता है, परन्तु वन में जाते समय उसने इन बाहरी चिह्नों को छोड़ दिया था, अर्थात् जङ्गल में छत्र-चामर लेकर राजा नहीं गया था। **राजलक्ष्मीम्** - राजा की

लक्ष्मी। **तेजोविशेषानुमिताम्** - विशेष तेज के कारण जिसका अनुमान किया जाता था। यद्यपि राजा ने उस समय छत्र और चामर नहीं धारण किया था, तथापि उसमें ऐसा कुछ विशेष तेज था कि लोग यह अनुमान कर लेते थे कि यही राजा दिलीप है। **दधानः** - धारण करते हुए। **अनाविष्कृतदानराजिः** - जिसके मद की रेखा प्रकट न हो। **अन्तर्मदावस्थः** - जिसके मद की अवस्था भीतर ही छिपी हो। **द्विपेन्द्रः** - हाथियों का राजा।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा दिलीप के वन-विचरण का वर्णन है–

लताप्रतानोद्ग्रथितैः स केशै-
रधिज्यधन्वा विचचार दावम्।
रक्षापदेशान्मुनिहोमधेनो-
र्वन्यान् विनेष्येन्निव दुष्टसत्त्वान् ॥8॥

अन्वय–लताप्रतानोद्ग्रथितैः केशैः सः अधिज्यधन्वा मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् वन्यान् दुष्टसत्त्वान् विनेष्यन्निव दावं विचचार।

हिन्दी व्याख्या – लताओं के तन्तुओं से बँधे हुए बालों से सुशोभित राजा दिलीप प्रत्यञ्चा चढ़े हुए धनुष को धारण किये हुए, मुनि वशिष्ठ की होमधेनु की रक्षा करने के बहाने मानो जङ्गली दुष्ट जीवों को शिक्षा देने के लिए जङ्गल में घूम रहे थे।

संस्कृत व्याख्या–लताप्रतानोद्ग्रथितैः–लतानां वल्लीनां प्रतानानि कुटिल तन्तवः तैः उद्ग्रथितैः गुम्फितैः, **केशैः**–कचैः (उपलक्षितः), **सः**–राजा दिलीपः, **अधिज्यधन्वा**–अधिगता आरोपिता ज्या मौर्वी यस्मिन् तादृशं धनुः चापो यस्य तथाभूतः (सन्), **मुनिहोमधेनोः**–मुनेः वशिष्ठस्य होमसाधनभूतायाः धेनोः नन्दिन्याः, **रक्षापदेशात्**–रक्षणव्याजात्, **वन्यान्**–अरण्यान्, **दुष्टसत्त्वान्**–हिंसकजन्तून्, **विनेष्यन् इव**–शिक्षयिष्यन् इव, **दावं**–वनं, **विचचार**–विचरितवान्।

संस्कृत भावार्थ–वल्लीकुटिलतन्तुसदृशशाखादिभिरुन्नमय्य गुम्फितैः केशैः (उपलक्षितः) सः राजा दिलीपः आरोपितमौर्वीकधनुष्मान् (सन्निति शेषः) मुनिहोमधेनोः नन्दिन्याः रक्षणव्याजात् काननसमुद्भवान् सिंहादीन् हिंस्रजन्तून् शिक्षयिष्यन् इव काननं वनं वा व्यचरत्।

शब्दार्थ – लताप्रतानोद्ग्रथितैः - लताओं की टेढ़ी-मेढ़ी तन्तुओं से बँधे हुए। **केशैः** - बालों से। **अधिज्यधन्वा** - धनुष की डोरी चढ़ाये हुए। **मुनिहोमधेनोः** - मुनि की होमधेनु। अर्थात् मुनि की गाय जो हवन की सामग्री, जैसे-घी, दूध आदि देती थी। **रक्षापदेशात्** - रक्षा करने के बहाने से। **वन्यान्** - जङ्गली। **दुष्टसत्त्वान्** - भयङ्कर हिंसक जीवों को। **विनेष्यन् इव** - शिक्षा देता हुआ। **दावम्** - जङ्गल। **विचचार** - घूम रहा था।

➡ **प्रसङ्ग**– वन में वृक्ष, पक्षी आदि भी राजा दिलीप का स्वागत कर रहे हैं–

विसृष्टपार्श्वानुचरस्य तस्य,
पार्श्वद्रुमाः पाशभृता समस्य।
उदीरयामासुरिवोन्मदाना-
मालोकशब्दं वयसां विरावैः ॥9॥

अन्वय–विसृष्टपार्श्वानुचरस्य, पाशभृता समस्य तस्य पार्श्वद्रुमाः उन्मदानां वयसां विरावैः आलोकशब्दम् उदीरयामासुरिव।

हिन्दी व्याख्या –अगल-बगल स्थित सेवकों को विदा कर देनेवाले तथा वरुण के समान प्रभावशाली उस राजा के आस-पास के वृक्षों ने, उन्मत्त पक्षियों के शब्द के द्वारा मानो जय शब्द का उच्चारण किया।

संस्कृत व्याख्या– विसृष्टपार्श्वानुचरस्य–विसृष्टाः त्यक्ताः पार्श्वानुचराः अन्तिकवर्तिसेवकाः येन तस्य, **पाशभृता**–वरुणेन, **समस्य**–तुल्यस्य, **तस्य**-दिलीपस्य, **पार्श्वद्रुमाः**–समीपवर्तिवृक्षाः, **उन्मदानाम्**–उत्कटमदानां, **वयसां**–खगानां, **विरावैः**-शब्दः, **आलोकशब्दं**–जयशब्दम्, **उदीरयामासुः इव**–अवदन् इव।

संस्कृत भावार्थ– यथा राजमन्दिरे सेवकाः मङ्गलध्वनिभिः तं संवर्द्धयन्ति स्म तथाऽरण्येऽपि तन्निकटवर्तिनः तरवः पार्श्वचरविहीनम् वरुणवत् प्रभावशालिनम् तं नृपं मत्तखगकुलकूजितरूपेण जयशब्देन संवर्द्धयामासुः इति भावः।

शब्दार्थ – विसृष्टपार्श्वानुचरस्य - जिसने अपने निकटवर्ती भृत्यों को छोड़ दिया था। **पार्श्वद्रुमाः** - अगल-बगल

के पेड़। **पाशभृता समस्य** - वरुण के समान (उस राजा का)। **उन्मदानाम्** - मतवाले। **वयसाम्** - पक्षियों के। **विरावैः** - शब्दों के द्वारा। **आलोकशब्दम्** - जय शब्द। **उदीरयामासुः** - उच्चारण करते थे।

➡ **प्रसङ्ग**–यहाँ राजा पर लताओं द्वारा पुष्प-वर्षा किये जाने का वर्णन है–

मरुत्प्रयुक्ताश्च मरुत्सखाभं
तमर्च्यमारादभिवर्तमानम्।
अवाकिरन् बाललताः प्रसूनै-
राचारलाजैरिव पौरकन्याः ॥10॥

अन्वय– मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः मरुत्सखाभम् आरात् अभिवर्तमानम् अर्च्यम् तम् प्रसूनैः पौरकन्याः आचारलाजैः इव अवाकिरन्।

हिन्दी व्याख्या – वायु से हिलती हुई छोटी-छोटी लताओं ने अग्नितुल्य तेजस्वी, समीप में स्थित तथा पूज्य उस राजा दिलीप के ऊपर इस प्रकार फूलों की वर्षा की जैसे नगरवासियों की कन्याएँ मङ्गल के लिए धान के लावों की वर्षा करती थीं।

संस्कृत व्याख्या– मरुत्प्रयुक्ताः–मरुता वायुना प्रयुक्ताः प्रेरिताः, **बाललताः**–कोमलवल्लयः, **मरुत्सखाभम्**–अग्नितुल्यतेजस्विनम्, **आरात् –** समीपे, **अभिवर्तमानं**–विद्यमानम्, **अर्च्यम्**– पूज्यं, **तं**–दिलीपं, **प्रसूनैः**– पुष्पैः, **पौरकन्याः**–नगरबालाः, **आचारलाजैः**–मङ्गललाजैः इव, **अवाकिरन्**–प्रचिक्षिपुः।

संस्कृत भावार्थ– वह्निना तुल्यं कान्तियुक्तम् दिलीपमागतं वीक्ष्य कोमललताः समीपस्थस्य तस्योपरि पुष्पवर्षणं कृतवत्यः यथा पुरकन्यकाः तस्योपरि मङ्गलार्थान् निर्मलान् लाजान् वर्षन्ति स्म।

शब्दार्थ – मरुत्प्रयुक्ताः - हवा से हिलती हुई। **बाललताः** - छोटी-छोटी, कोमल लताएँ। **मरुत्सखाभम्** - वायु के मित्र अग्नि के समान कान्तिवाले को। **अर्च्यम्** - पूजायोग्य। **अभिवर्तमानम्** - उपस्थित। **पौरकन्याः** - नगर की कन्याएँ। **आचारलाजैः** - मङ्गल के लिए फेंके जानेवाले लावे। जब कभी कोई राजा अथवा कोई महान् व्यक्ति किसी नगर में प्रवेश करता है तो नगर की कुमारी कन्याएँ भूँजे हुए धान के लावे उसके स्वागत के वास्ते फेंकती हैं, उसी प्रकार लताओं से जब फूल गिरे तो ऐसा प्रतीत होता था मानो उसके (राजा के) स्वागत के लिए पुर की कन्याएँ लावों की वर्षा कर रही हैं।

➡ **प्रसङ्ग**–वन में हरिणियाँ निःशङ्क भाव से राजा को निहार रही हैं–

धनुर्भृतोऽप्यस्य दयाऽऽर्द्रभाव-
माख्यातमन्तः करणैर्विशङ्कैः।
विलोकयन्त्यो वपुरापुरक्ष्णाम्
प्रकामविस्तारफलं हरिण्यः ॥11॥

अन्वय–धनुर्भृतः अपि अस्य विशङ्कैः अन्तःकरणैः दयार्द्रभावम् आख्यातम् वपुः विलोकयन्त्यः हरिण्यः अक्ष्णां प्रकामविस्तारफलम् आपुः।

हिन्दी व्याख्या – यद्यपि राजा दिलीप ने धनुष धारण किया था फिर भी उनके हृदय का दयायुक्त भाव हरिणियों को मालूम हो गया। वे निर्भय होकर उनके शरीर को देख रहीं थीं। इस प्रकार उनके शरीर को देखती हुई हरिणियों को अपने नेत्र के बड़ा होने का फल मिल गया।

संस्कृत व्याख्या– धनुर्भृतः अपि– चापधारिणःअपि, **अस्य**–दिलीपस्य, **विशङ्कैः**–निर्भीकैः, **अन्तःकरणैः**–चित्तैः, **दयार्द्रभावं**–कृपारसार्द्राभिप्रायम्, **आख्यातं**–सूचितं, **वपुः**–शरीरं, **विलोकयन्त्यः**–पश्यन्त्यः, **हरिण्यः**–मृग्यः, **अक्ष्णां**–नेत्राणां, **प्रकामविस्तारफलं** -प्रकामं यथेष्ट विस्तारस्य विशालतायाः फलम्, **आपुः**–प्राप्नुवन्।

संस्कृत भावार्थ– धनुर्धारिणमपि तमायान्तं विलोक्य यतो भीतानामपि हरिणीनां मनसि भयमात्रमपि न जज्ञे अतएव ताः बुबुधिरे यदयं नृपः यद्यपि भीषण चापं धत्ते तथापि अस्य हृदये दया अस्ति अतएव ताः नृपस्य मनोहरां मूर्तिम् पश्यन्त्यः स्वस्य नयनानां विशालतायाः सफलतामधिजग्मुः।

शब्दार्थ – धनुर्भृतः - धनुष को धारण करनेवाले का। **अस्य** - राजा का। **विशङ्कैः** - निडर होकर। **अन्तःकरणैः** -

चित्त से। **दयार्द्रभावम्** - दया से जिसका भाव कोमल है। **आख्यातम्** - बताया गया। उन हरिणियों के निर्भय चित्त ने यह बताया कि इसका शरीर दया से परिपूर्ण है। **वपुः** - शरीर। **विलोकयन्त्यः** - देखती हुई। **हरिण्यः** - हरिणियाँ। **अक्ष्णाम् प्रकाम-विस्तारफलम्** - आँखों के बड़े होने का फल। **आपुः** - पाया। हरिणियों ने राजा के दयापूर्ण शरीर को देखा, इससे उनकी आँखों के बड़ा होने का फल उन्हें मिल गया। यद्यपि राजा धनुष धारण किये था और उसे देखकर मृगादिकों को भय से भागना चाहिए था, तथापि उसे देखकर उनके मन में किसी भी प्रकार का भय नहीं आया, अतः उन्होंने यह समझ लिया कि राजा दयालु है और हम लोगों का वध नहीं करेगा। शत्रु और मित्र की पहचान करने में मनुष्य का अन्तःकरण ही प्रधान होता है।

➡ **प्रसङ्ग**–वन-देवताओं द्वारा राजा के यशोगान किये जाने का वर्णन–

स कीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैः
कूजद्भिरापादितवंशकृत्यम्।
शुश्राव कुञ्जेषु यशः स्वमुच्चै–
रुद्गीयमानं वनदेवताभिः ॥12॥

अन्वय–सः मारुतपूर्णरन्ध्रः कूजद्भिः कीचकैः आपादितवंशकृत्यम् कुञ्जेषु वनदेवताभिः उच्चैः उद्गीयमानं स्वं यशः शुश्राव।

हिन्दी व्याख्या – उस राजा ने शब्द करते हुए कीचकसंज्ञक बाँसों के द्वारा, जो वंशी (बाँसुरी) का काम कर रहे थे, लता-गृहों में वनदेवताओं से ऊँचे स्वरों में गाये जाते हुए अपने यश को सुना।

संस्कृत व्याख्या– सः–दिलीपः, **मारुतपूर्णरन्ध्रैः**–वायुपूरितच्छिद्रैः, **कूजद्भिः–** शब्दं कुर्वद्भिः, **कीचकैः**–वेणुविशेषैः, **आपादितवंशकृत्यम्**–आपादितं सम्पादितं वंशकृत्यं वेणुवाद्यकार्यं यस्मिन् कर्मणि तद्यथा स्यात् तथा, **कुञ्जेषु**–लतागृहेषु, **वनदेवताभिः**–वनदेवीभिः, **उच्चैः**–तारस्वरेण, **उद्गीयमानं**–स्तूयमानं, **स्वं**–निजं, **यशः**–कीर्तिं, **शुश्राव**–श्रुतवान्।

संस्कृत भावार्थ–तस्मिन्वने एकान्तशीतलेषु वल्लरीकुञ्जेषु सुखासीनाः वनदेवताः मङ्गलगायिका इव तस्य नृपतेः यशः गायन्त्यः तस्य कर्णसुखं चक्रिरे वनजातैः कीचकैश्च पवनपूर्णरन्ध्रतया मधुरध्वनिभिः तासां गानस्य अनुरञ्जकम् वंशीवाद्यकार्यं सम्पादितम् इति भावः।

शब्दार्थ – मारुतपूर्णरन्ध्रैः - हवा से पूर्ण छिद्रवाले (बाँस)। **कीचकैः** - कीचक एक प्रकार का बाँस है जो हवा से हिलने पर शब्द करता है। **कूजद्भिः** - आवाज करते हुए। **आपादितवंशकृत्यम्** - जिसमें वीणा का काम (कीचकों द्वारा) किया जा रहा था। कीचकों के छेदों में हवा भर जाने से वे भी शब्द कर रहे थे। उनका शब्द करना ऐसा प्रतीत होता था, मानो बाँसुरी बज रही हो। **वनदेवताभिः** - वनदेवताओं से। **उद्गीयमानम्** - गाया जाता हुआ। **शुश्राव** - सुना। वनदेवता राजा का यश गा रहे थे और बाँस मानो बाँसुरी का काम कर रहे थे। क्योंकि उनके छेदों में जब हवा भर गयी तो वे स्वयं शब्द करने लगे। उनका शब्द करना मानो बाँसुरी का बजाना है।

➡ **प्रसङ्ग**–वायु द्वारा राजा की सेवा किये जाने का वर्णन–

पृक्तस्तुषारैर्गिरिनिर्झराणा-
मनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी।
तमातपक्लान्तमनातपत्र-
माचारपूतं पवनः सिषेवे ॥13॥

अन्वय–गिरिनिर्झराणां तुषारैः पृक्तः अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी पवनः अनातपत्रम्, आतपक्लान्तम् आचारपूतं सिषेवे।

हिन्दी व्याख्या – पहाड़ी झरनों के जल-बिन्दुओं से भींगे हुए वृक्षों के कुछ-कुछ हिलते हुए पुष्पों की गन्ध से वायु ने छत्ररहित, धूप से व्याकुल सदाचार के कारण पवित्र उस राजा की सेवा की।

संस्कृत व्याख्या– गिरिनिर्झराणां– गिरिषु पर्वतेषु निर्झराः वारिप्रवाहाः तेषाम्, **तुषारैः**–सीकरैः, **पृक्तः–** सम्पृक्तः, **अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी–** अनोकहानां वृक्षाणाम् आकम्पितानि ईषत्कम्पितानि यानि पुष्पाणि कुसुमानि तेषां गन्धः आमोदः अस्यास्तीति एवंविधः (शीतलो मन्दः सुगन्धः), **पवनः–** वायुः, **अनातपत्रं–** छत्ररहितम्, **आतपक्लान्तम्–** आतपेन

सूर्यातपेन क्लान्तं पीडितम्, **आचारपूतम्**–आचारेण नियमपालनेन पूतं पवित्रं, **तं**– राजानं, **सिषेवे**– सेवितवान्।

संस्कृत भावार्थ– पर्वतवारिप्रवाहाणाम् तुषारैः पृक्तः पादपानाम् ईषच्चलितप्रसूनेन आमोदवान् अनिलः छत्ररहितम् व्रतार्थमस्वीकृतच्छत्रमिति भावः अतएव सूर्यकिरणम्लानम् सदाचारपवित्रम् तं राजानं सेवितान्। शीतलान् वारिकणान् वहन् ईषत्कम्पितानां तरुपुष्पाणाम् गन्धं हरन् मन्दो गन्धवहस्तस्मिन् वने छत्रहीनम् धर्मतापितम् सदाचारपवित्रं तं दिलीपं सेवितवान् इति भावः।

शब्दार्थ–गिरिनिर्झराणाम्-पर्वतों के झरनों के। **तुषारैः** - कणों से। **अनोकहाकम्पितपुष्पगन्धी**-वृक्षों के कुछ-कुछ हिलते हुए फूलों की गन्धवाला। **आतपक्लान्तम्** - धूप से व्याकुल। **अनातपत्रम्** - जिसके पास छाता नहीं था। **आचारपूतम्** - (अपने) सदाचार से पवित्र।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा के प्रवेश करने से वन में पड़नेवाले प्रभाव का चित्रण है–

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्नि-
रासीद्विशेषा फलपुष्पवृद्धिः।
ऊनं न सत्त्वेष्वधिको बबाधे
तस्मिन् वनं गोप्तरि गाहमाने ॥14॥

अन्वय– तस्मिन् गोप्तरि वनं गाहमाने दवाग्निः वृष्ट्या विनापि शशाम फलपुष्पवृद्धिः विशेषा आसीत्। सत्त्वेषु अधिकः ऊनं न बबाधे।

हिन्दी व्याख्या – प्रजारक्षक उस राजा दिलीप ने जब वन में प्रवेश किया तो वन की आग बिना पानी के ही शान्त हो गयी, फल और पुष्पों की अधिकता हो गयी, बलवान् (जैसे व्याघ्रादि) ने अपने से निर्बल जानवर (मृगादि) को नहीं सताया।

संस्कृत व्याख्या–गोप्तरि–रक्षके, **तस्मिन्**–दिलीपे, **वनं**–काननं, **गाहमाने**– प्रविशति (सति), **दवाग्निः**–दावानलः, **वृष्ट्या**–वर्षणेन, **विनापि**–ऋतेऽपि, **शशाम**–शान्तिमभजत, **फलपुष्पवृद्धिः**–फलकुसुमसमृद्धिः, **विशेषा**–अधिका, आसीत्, **सत्त्वेषु**– जन्तुषु, **अधिकः**–प्रबलः (व्याघ्रादिः) **ऊनं**–दुर्बलं (हरिणादिकं), **न बबाधे**–न पीडयामास।

संस्कृत भावार्थ–अहो महिमा तस्य राजर्षेः यस्मिन् प्रविष्टमात्र एव तस्मिन् कानने विना वृष्ट्यापि वनाग्निः शशाम। वृक्षाः महता बाहुल्येन फलानि पुष्पाणि च धारयामासुः। अधिकबलशाली पशुः निर्बलं न पीडयामास इति भावः।

शब्दार्थ – गोप्तरि - रक्षा करनेवाला। **गाहमाने** - प्रवेश करने पर। **वृष्ट्या विनापि** - बिना जल-वृष्टि के ही। **दवाग्निः** - वन की आग - दावानलः। **शशाम** - शान्त हो गयी। **फलपुष्पवृद्धिः** - फलों और फूलों की अधिकता। **सत्त्वेषु** - जीवों में। **अधिकः** - बलवान्। **ऊनम्** - कमजोर को।

➡ **प्रसङ्ग**–दिन के अन्त में नन्दिनी के अपने स्थान को लौटने का वर्णन–

सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि
कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुम्।
प्रचक्रमे पल्लवरागताम्रा
प्रभा पतङ्गस्य मुनेश्च धेनुः ॥15॥

अन्वय–पल्लवरागताम्रा पतङ्गस्य प्रभा मुनेः धेनुः च सञ्चारपूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्ते निलयाय गन्तुं प्रचक्रमे।

हिन्दी व्याख्या – नवीन पत्तों के समान रङ्गवाली (लाल) सूर्य की किरणें और वशिष्ठ की गाय ये दोनों अपने गमन से दिशाओं के अन्त को पवित्र करके दिन के अन्त में अपने-अपने स्थान की ओर चलने लगीं।

संस्कृत व्याख्या–पल्लवरागताम्रा– किसलयवर्णारुणा, **पतङ्गस्य**–सूर्यस्य, **प्रभा**–कान्तिः, **मुनेः**–वशिष्ठस्य, **धेनुःच**–गौः च नन्दिनीत्यर्थः, **सञ्चारपूतानि**– सञ्चारेण भ्रमणेन पूतानि पवित्राणि, **दिगन्तराणि**–दिशामवकाशान्, **कृत्वा**–विधाय, **दिनान्ते**–सायंकाले, **निलयाय**–वशिष्ठाश्रमाय (प्रभापक्षे अस्तमयाय), **गन्तुं**– चलितुं, **प्रचक्रमे**–प्रक्रान्तवती।

संस्कृत भावार्थ–सन्ध्यासमये नवकिसलयवर्णारुणा सूर्यप्रभा किरणैः दिगन्तराणि निर्मलीकुर्वाणा अस्ताचलं चलितुं प्रववृते तावत् नवपल्लवारुणा सा नन्दिनी निजगमनेन मार्गं पवित्रीकुर्वन्ती तपोवनं गन्तुं प्रववृते इति भावः।

शब्दार्थ – पल्लवरागताम्रा - पत्ते के रङ्ग के समान लाल वर्णवाली। सूर्य की प्रभा तथा मुनि की गाय दोनों पत्तों

के रङ्ग के समान लाल वर्ण थीं। **पतङ्गस्य प्रभा** - सूर्य की कान्ति (किरण)। **दिगन्तराणि** - दिशाओं के मध्यभाग को। दिशाओं के बीच के प्रदेशों को। **सञ्चारपूतानि** - अपने गमन से पवित्र करके। **दिनान्ते** - दिन बीतने पर। **निलयाय** - गृहाय, अस्तमयाय। गाय के साथ अर्थ करने में निलयाय का अर्थ घर होगा और प्रभा के साथ अर्थ करने में अस्त होना होगा। सूर्य की प्रभा अस्त होने की तैयारी करने लगी और गाय घर जाने लगी। **गन्तुम्** - जाने के लिए। **प्रचक्रमे** - तैयारी करने लगीं।

➡ **प्रसङ्ग–** राजा के आगे चलती हुई नन्दिनी की शोभा का वर्णन–

तां देवतापित्रतिथिक्रियार्था-
मन्वग्ययौ मध्यमलोकपालः।
बभौ च सा तेन सतां मतेन
श्रद्धेव साक्षाद्विधिनोपपन्ना ॥16॥

अन्वय– मध्यमलोकपालः देवतापित्रतिथिक्रियार्थां ताम् अन्वग् ययौ सतां मतेन तेन उपपन्ना सा विधिना (उपपन्ना) साक्षात् श्रद्धा इव बभौ च।

हिन्दी व्याख्या – भूलोक के पालन करनेवाले राजा दिलीप देवता, पितर और अतिथियों के कार्य (यज्ञ, श्रद्धा, भोजनादि) को पूरा करनेवाली उस गाय के पीछे चले। सज्जनों के द्वारा पूजित राजा से युक्त वह नन्दिनी भी उस समय वैसी ही सुशोभित थी, जैसे सज्जनों के किये गये अनुष्ठान से युक्त श्रद्धा शोभा पाती है।

संस्कृत व्याख्या–मध्यमलोकपालः–भूपालो दिलीपः, **देवतापित्रतिथिक्रियार्थां–**देवतापित्रतिथीनां क्रिया यागश्राद्धदानानि ता एवार्थः प्रयोजनं यस्याः तादृशी, **तां–**धेनुम्, **अन्वग्–**अनुपदं, **ययौ–**चलितवान् च, पुनः, **सतां–**सज्जनानां, **मतेन–**मान्येन, **तेन–**राज्ञा दिलीपेन, **उपपन्ना–**युक्ता, **सा–**धेनुः, **विधिना–**अनुष्ठानेन (उपपन्ना), **साक्षात्–**प्रत्यक्षा, **श्रद्धा इव–**आस्तिक्यबुद्धिरिव, **बभौ–**शोभितवती।

संस्कृत भावार्थ–पृथ्वीपतिः दिलीपो देवादिनिमित्तकयागादिसाधिकां तां धेनुम् अनुगच्छन् सन् ययौ साधुजनसेवितेन तेन दिलीपेन युक्ता साऽपि साक्षादनुष्ठानेन युक्ता श्रद्धा इव शुशुभे।

शब्दार्थ – मध्यमलोकपालः - अर्थात् पृथ्वी का पालन करनेवाला। ऊपर आकाश है, नीचे पाताल है और बीच में पृथ्वी है। इसी से इसका मध्यमलोक नाम पड़ा। **देवतापित्रतिथिक्रियार्थाम्** - जो (गाय) देवता, पितर तथा अतिथियों के सत्कार की सामग्री देती थी। **अन्वग्** - पीछे-पीछे। **ययौ** - चला। **सतां मतेन** - सज्जनों द्वारा सम्मानित। **उपपन्ना** - युक्तः। **विधिना** - अनुष्ठान से। **श्रद्धा** - आस्तिक्यबुद्धि। श्रद्धा (विश्वास) जैसे शोभा पाती है, उसी प्रकार साधुजन सम्मानित उस राजा के साथ गाय शोभा पाती थी।

➡ **प्रसङ्ग–**वन की सन्ध्याकालीन शोभा का वर्णन है–

स पल्वलोत्तीर्णवराहयूथा-
न्यावासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि।
ययौ मृगाध्यासितशाद्वलानि
श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ॥17॥

अन्वय–सः पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि मृगाध्यासितशाद्वलानि श्यामायमानानि वनानि पश्यन् ययौ।

हिन्दी व्याख्या – राजा दिलीप उस वन को देखता हुआ गया जिसमें छोटे-छोटे तालाबों से जङ्गली सुअर के झुण्ड-के-झुण्ड निकल रहे थे और जिसमें मोर पक्षी अपने बसेरे के वृक्षों की ओर जाने के लिए उन्मुख थे तथा जिसमें हरी घास के ऊपर हरिण बैठे थे। अतएव जो सर्वत्र श्याम-ही-श्याम प्रतीत होता था।

संस्कृत व्याख्या– सः–राजा दिलीपः, **पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि–**क्षुद्रजलाशयनिर्गतशूकरसमूहानि, **आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि–**आवासवृक्षान् प्रति निवासतरून् प्रति उन्मुखाः बर्हिणाः मयूराः येषु तानि, **मृगाध्यासितशाद्वलानि–**मृगैः हरिणैः अध्यासिताः अधिष्ठिताः शाद्वलाः येषु तानि, **श्यामायमानानि–**कृष्णीभूतानि, **वनानि–**काननानि, **पश्यन्–**

अवलोकयन्, **ययौ–** जगाम।

संस्कृत भावार्थ–स राजा स्वल्पजलाशयेभ्यो विनिर्गतानां सूकरयूथानां स्वनिवासवृक्षान् प्रति गन्तुमुत्सुकानाम् मृगैः अधिश्रितानाम् शष्पैः हरितानां वनप्रदेशानां च श्यामतया सर्वत्र कृष्णवर्णानि वनानि पश्यन् मुनेराश्रमं प्रति अगच्छत्।

शब्दार्थ – पल्वलोत्तीर्णवराहयूथानि - वह वन जहाँ जङ्गली सुअरों के झुण्ड-के-झुण्ड तालाबों से निकल रहे थे। गर्मी से व्याकुल होकर तालाबों में अपने को ठण्डा कर रहे सुअर शाम को उसमें से निकल रहे थे। **आवासवृक्षोन्मुखबर्हिणानि** - जिस वन में मोर अपने-अपने निवासवाले वृक्षों को जाने के लिए उत्सुक थे। शाम के समय मोर भी अपने-अपने आवास-वृक्षों की ओर उड़ रहे थे। **मृगाध्यासितशाद्वलानि** - वे वन जहाँ कोमल घास से युक्त स्थान पर हिरण बैठे हुए थे। **श्यामायमानानि**- जो श्याम वर्ण के हो रहे थे उन (वनों को)। **पश्यन्** - देखता हुआ।

➡ **प्रसङ्ग–**स्थूलता के कारण नन्दिनी और राजा दोनों की गति मन्थर है–

आपीनभारोद्वहनप्रयत्नाद्
गृष्टिर्गुरुत्वाद्वपुषो नरेन्द्रः।
उभावलञ्चक्रतुरञ्चिताभ्यां
तपोवनावृत्तिपथं गताभ्याम् ॥18॥

अन्वय–गृष्टिः नरेन्द्रश्च उभौ आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् वपुषः गुरुत्वात् च अञ्चिताभ्यां गताभ्यां तपोवनावृत्तिपथम् अलञ्चक्रतुः।

हिन्दी व्याख्या – स्तनों के भार को धारण करने के परिश्रम से एक बार की ब्यायी हुई गाय तथा शरीर के भारीपन से राजा दोनों ही ने अपनी सुन्दर गति से तपोवन से लौटने के रास्ते को सुशोभित किया।

संस्कृत व्याख्या–गृष्टिः–सकृत्प्रसूता गौः नन्दिनी, **नरेन्द्रश्च–**भूपश्च, **उभौ–**द्वौ, **आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात्–**आपीनमूधस्तस्य भारतस्य उद्वहनं नयनं तस्मिन् प्रयत्नः प्रयासः तस्माद् हेतोः, **वपुषः–**शरीरस्य, **गुरुत्वात् च–**आधिक्याच्च, **अञ्चिताभ्यां–**दर्शनीयाभ्यां, **गताभ्यां–**गमनाभ्यां, **तपोवनावृत्तिपथं–**तपसां तपश्चर्याणां वनमरण्यम् तस्मादावृत्तेः परावर्तनस्य पन्थाः मार्गस्तम्, **अलञ्चक्रतुः–**शोभयामासतुः।

संस्कृत भावार्थ–सा नन्दिनी महोधोभारात् दिलीपः च विपुलशरीरभारात् मृदुपदं जग्मतुः तेन च मनोहरेण चरणक्षेपेण उभौ आगमपन्थानम् भूषितवन्तौ इति भावः।

शब्दार्थ – आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् - स्तन के बोझ को धारण करने के परिश्रम से। **गृष्टिः** - एक बार की ब्यायी हुई गाय। **वपुषः गुरुत्वात्** - शरीर के भारीपन के कारण। **अञ्चिताभ्याम्** - सुन्दर। **गताभ्याम्** - चाल से। **उभौ** - दोनों (राजा दिलीप तथा नन्दिनी)। **तपोवनावृत्तिपथम्** - तपोवन से लौटने का रास्ता। **अलञ्चक्रतुः** - सुशोभित किया।

➡ **प्रसङ्ग–**तपोवन से लौटे हुए राजा को सुदक्षिणा द्वारा अपलक नेत्रों से देखने का वर्णन है–

वशिष्ठधेनोरनुयायिनं त-
मावर्त्तमानं वनिता वनान्तात्।
पपौ निमेषालसपक्ष्मपङ्क्ति-
रुपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥19॥

अन्वय–वशिष्ठधेनोः अनुयायिनम् वनान्तात् आवर्त्तमानं तं वनिता निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः (सती) उपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् पपौ।

हिन्दी व्याख्या – वशिष्ठ की गाय के पीछे-पीछे चलनेवाले तपोवन से लौटते हुए उस राजा को सुदक्षिणा ने टकटकी लगाये हुए नेत्रों से पी लिया, मानो उसके नेत्र प्यासे थे।

संस्कृत व्याख्या–वशिष्ठधेनोः–नन्दिन्याः, **अनुयायिनम्–**अनुव्रजन्तम्, **वनान्तात्–** अरण्यप्रान्तात्, **आवर्त्तमानं–**प्रत्यागच्छन्तं, **तं–**दिलीपं, **वनिता–**सुदक्षिणा, **निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः–**निमीलननिष्क्रिय-नेत्रलोमावलिः (सति), **उपोषिताभ्यामिव–**कृतोपवासाभ्यामिव, **लोचनाभ्यां–**नयनाभ्यां, **पपौ–**पीतवती सादरमधिकं व्यलोकयदित्यर्थः।

संस्कृत भावार्थ–वल्लभस्यादर्शनेन अधीरा सुदक्षिणा नन्दिन्या सह नृपं वनात् प्रत्यागच्छन्तं दृष्ट्वा तृष्णाविस्फारितेन नेत्रद्वयेन

ददर्श। यथा कश्चित् उपोषितः शीतलं जलं पुनः पुनः पीत्वाऽपि तृप्तिं न प्राप्नोति तथैव सुदक्षिणायाः प्रियतमदर्शनवियोगतापितम् नेत्रयुगलमपि कमनीयं वल्लभस्य रूपं विलोक्य तृप्तिं न लेभे।

शब्दार्थ – वशिष्ठधेनोः - वशिष्ठ की गाय का। **अनुयायिनम्** - अनुयायी। **वनान्तात्** - जङ्गल से। **आवर्त्तमानम्** - लौटते हुए। **वनिता** - स्त्री, सुदक्षिणा। **निमेषालसपक्ष्मपंक्तिः** - जिसकी बरौनियाँ बन्द होने या गिरने में अलसाती थीं। अर्थात् जो टकटकी लगाकर देख रही थी। **उपोषितान्याम्** - सुदक्षिणा के लोचनों ने मानो उपवास-से किये हों। ऐसे नेत्रों से उसने राजा को देखा। **पपौ** - पिया। सतृष्ण नेत्रों से टकटकी लगाकर राजा को देखा। जिस प्रकार भूखा व्यक्ति खाद्य पदार्थ को बड़े चाव से खाता है, उसी प्रकार सुदक्षिणा ने बड़े चाव से बिना पलकों को गिराये सतृष्ण नेत्रों से राजा को देखा, क्योंकि उन्होंने बहुत देर से राजा को नहीं देखा था।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा और रानी के बीच में स्थित नन्दिनी की शोभा का वर्णन है–

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन
प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनु-
र्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥20॥

अन्वय–वर्त्मनि पार्थिवेन पुरस्कृता पार्थिवधर्मपत्न्या (च वर्त्मनि) प्रत्युद्गता सा धेनुः तदन्तरे (सुदक्षिणादिलीपान्तरे) दिनक्षपामध्यगता सन्ध्या इव विरराज।

हिन्दी व्याख्या – राजा गाय को आगे किये हुए आ रहे थे (और) रानी ने आगे बढ़कर गाय की अगवानी की। इस प्रकार राजा और रानी दोनों के बीच में वह गाय ऐसी शोभा देती थी, जैसे रात और दिन के बीच सन्ध्या शोभा देती है।

संस्कृत व्याख्या–वर्त्मनि–मार्गे, **पार्थिवेन**–राज्ञा, **पुरस्कृता**–अग्रतःकृता, **पार्थिवधर्मपत्न्या**–सुदक्षिणया, **प्रत्युद्गता**–स्वागतार्थमभ्युद्गता, **सा धेनुः**–नन्दिनी, **तदन्तरे**–तयोर्दम्पत्योर्मध्ये, **दिनक्षपामध्यगता**–दिनोरात्र्योर्मध्यगता, **सन्ध्या इव**–सायंकाल इव, **विरराज**–शुशुभे।

संस्कृत भावार्थ–यस्मिन् समयेऽग्रेकृत्य नन्दिनीं दिलीपो वशिष्ठाश्रमं प्रापत् तदा दिलीपानुगम्यमानां तामानेतुं सुदक्षिणा प्रत्युद्ययौ। तस्मिन्काले सुदक्षिणादिलीपयोः मध्ये गच्छन्ती नन्दिनी पाटलवर्णतया दिवसरजन्योः मध्ये सन्ध्येव शुशुभे।

शब्दार्थ – वर्त्मनि - मार्ग में। **पार्थिवेन** - राजा से। **पुरस्कृता** - आगे की हुई। आगे गाय थी पीछे-पीछे राजा थे। **पार्थिवधर्मपत्न्या** - राजा की धर्मपत्नी से। **प्रत्युद्गता** - जिसका स्वागत आगे से किया गया। **तदन्तरे** - उन दोनों के बीच में। आगे से सुदक्षिणा आ गयी, पीछे राजा थे। इस प्रकार उन दोनों के बीच में। **दिनक्षपामध्यगता** - दिन और रात के बीच में। राजा अपनी कान्ति के कारण दिन के समान था, रानी अपनी सुन्दरता के कारण रात्रि के समान थी और गाय अपने पाटल वर्ण के कारण लाल रङ्गवाली सन्ध्या के समान थी।

➡ **प्रसङ्ग**–सुदक्षिणा के द्वारा नन्दिनी की पूजा का वर्णन है–

प्रदक्षिणीकृत्य पयस्विनीं तां
सुदक्षिणा साक्षतपात्रहस्ता।
प्रणम्य चानर्च विशालमस्याः
शृङ्गान्तरं द्वारमिवार्थसिद्धेः ॥21॥

अन्वय–साक्षतपात्रहस्ता सुदक्षिणा पयस्विनीं तां प्रदक्षिणीकृत्य प्रणम्य च अर्थसिद्धेः द्वारम् इव अस्याः विशालम् शृङ्गान्तरम् आनर्च।

हिन्दी व्याख्या – अक्षतों से युक्त पात्र को हाथ में लेकर रानी सुदक्षिणा ने उत्तम दूधवाली उस नन्दिनी की प्रदक्षिणा तथा वन्दना करके उसके विशाल सींगों के बीच के भाग की इस प्रकार पूजा की मानो वह उनकी मनःकामना की सिद्धि का द्वार हो।

संस्कृत व्याख्या–साक्षतपात्रहस्ता–अक्षतानां तण्डुलविशेषाणां पात्रं भाजनं तेन सह वर्तते इति साक्षतपात्रौ तादृशौ हस्तौ

यस्याः सा, **सुदक्षिणा**–दिलीपभार्या, **पयस्विनीं**–प्रशस्तदुग्धां, **तां**–नन्दिनी, **प्रदक्षिणीकृत्य**–परिक्रम्य, प्रणम्यनत्वा, च, **अर्थसिद्धेः**–कार्यसिद्धेः, **द्वारम् इव**–प्रवेशमार्गमिव, **अस्याः**–नन्दिन्याः, **विशालं**–प्रशस्तं, **शृङ्गान्तरं**–विषाणमध्यम्, **आनर्च**–पूजयामास।

संस्कृत भावार्थ–यदा नन्दिनी आश्रमम् आगता तदा सुदक्षिणा अक्षतयुक्तपात्रं हस्ते गृहीत्वा तस्याः प्रदक्षिणां कृतवती तथा च तां प्रणम्य तस्याः विशालं मस्तकं निजाभीष्टसिद्धेः कारणम् मत्वा पूजयामास।

शब्दार्थ – साक्षतपात्रहस्ता - अक्षतयुक्त पात्र हाथ में लेकर। **पयस्विनीम्** - उत्तम दूध देनेवाली को। **प्रदक्षिणीकृत्य** - प्रदक्षिणा करके। **प्रणम्य** - प्रणाम करके। **अर्थसिद्धेः** - अर्थ की सिद्धि, मनोकामना की पूर्ति। **शृङ्गान्तरम्** - दोनों सींगों के बीच का भाग अर्थात् मस्तक। **आनर्च** - पूजा। **द्वारम्** - दरवाजा। नन्दिनी के मस्तक की पूजा सुदक्षिणा ने की मानो वह उसके मनोरथ-सिद्धि का द्वार था। अर्थात् उसकी मनोरथ-सिद्धि वहीं से प्राप्त होगी।

➨ **प्रसङ्ग**–नन्दिनी ने सुदक्षिणा द्वारा की गयी पूजा को स्वीकार किया–

वत्सोत्सुकाऽपिस्तिमिता सपर्यां
प्रत्यग्रहीत्सेति ननन्दतुस्तौ।
भक्त्योपपन्नेषु हि तद्विधानां,
प्रसादचिह्नानि पुरः फलानि ॥22॥

अन्वय–वत्सोत्सुकापि सा स्तिमिता (सती) सपर्याम् प्रत्यग्रहीत् इति तौ ननन्दतुः। भक्त्या उपपन्नेषु तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि (भवन्ति)।

हिन्दी व्याख्या – अपने बछड़े को देखने के लिए उत्कण्ठित होने पर भी स्थिर होकर उस (नन्दिनी) ने सुदक्षिणा द्वारा की गयी पूजा को स्वीकार किया। यह देखकर वे दोनों (राजा और रानी) प्रसन्न हुए। क्योंकि नन्दिनी के समान महात्मा लोग जब अपने भक्तों की पूजा स्वीकार करते हैं और प्रसन्नता का चिह्न दिखाते हैं तो इससे प्रतीत होता है कि उसका फल शीघ्र मिलेगा और अभीष्ट-सिद्धि होगी।

संस्कृत व्याख्या–**वत्सोत्सुकापि**–वत्सोत्कण्ठितापि, **सा**–नन्दिनी, **स्तिमिता**– निश्चला (सती), **सपर्यां**–पूजां, **प्रत्यग्रहीत्**–स्वीकार, **इति**–हेतोः, **तौ**–दम्पती, **ननन्दतुः**–प्रसन्नौ बभूवतुः। **भक्त्या**–श्रद्धया, **उपपन्नेषु**–युक्तेषु, **तद्विधानां**–तस्याः धेन्वाः विधा इव विधा प्रकारो येषां येषां महतामित्यर्थः, प्रसादचिह्नानि-प्रसन्नतालक्षणानि, **पुरःफलानि**–आसन्नलाभवन्ति (भवन्ति)।

शब्दार्थ – वत्सोत्सुका - बछड़े के लिए उत्कण्ठित। **स्तिमिता** - निश्चल होकर। **सपर्याम्** - पूजा को। सुदक्षिणा द्वारा की गयी पूजा को। **प्रत्यग्रहीत्** - स्वीकार किया। शाम का समय था। नन्दिनी अपने बछड़े को देखने के लिए बड़ी उत्सुक थी तथापि शान्तिपूर्वक खड़ी होकर उसने सुदक्षिणा की पूजा को स्वीकार किया। **इति** - इस कारण। शान्त होकर पूजा स्वीकार करने के कारण। **तौ ननन्दतुः** - दोनों राजा और रानी आनन्दित हुए। **भक्त्या उपपन्नेषु** - भक्तियुक्त लोगों पर (में), **तद्विधानां** - उसके (नन्दिनी के) समान लोगों का। **प्रसादचिह्नानि** - प्रसन्नता के लक्षण। **पुरःफलानि** - शीघ्र फल देनेवाला। नन्दिनी के समान महापुरुष जब अपने भक्तों के ऊपर प्रसन्नता दिखाते हैं, तो उसका अर्थ यह होता है कि भक्त की अभीष्टसिद्धि शीघ्र ही होगी। नन्दिनी ने शान्तिपूर्वक ठहरकर जब रानी की पूजा को स्वीकार किया तब राजा और रानी ने यह समझ लिया कि अब उनका मनोरथ जल्दी सिद्ध होगा, इसलिए वे दोनों प्रसन्न हुए।

➨ **प्रसङ्ग**–राजा के सायंकालीन कृत्य का वर्णन–

गुरोः सदारस्य निपीड्यपादौ
समाप्य सान्ध्यञ्च विधिं दिलीपः।
दोहावसाने पुनरेव दोग्ध्रीं
भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥23॥

अन्वय–भुजोच्छिन्नरिपुः दिलीपः सदारस्य गुरोः पादौ निपीड्य सान्ध्यं विधिं च समाप्य दोहावसाने निषण्णाम् दोग्ध्रीम् एव पुनर्भेजे।

हिन्दी व्याख्या – अपने भुजबल से शत्रुओं का नाश करनेवाले राजा दिलीप सपत्नीक गुरु के चरणों की वन्दना करके और सायङ्कालीन कृत्यों को समाप्त करके दुही जाने के बाद बैठी हुई गाय की फिर से सेवा करने लगे।

संस्कृत व्याख्या–भुजोच्छिन्नरिपुः–भुजाभ्यां बाहुभयम् उच्छिन्नाः विनाशिताः रिपवः शत्रवो येन तादृशः, दिलीपः, **सदारस्य–**सपत्नीकस्य, **गुरोः–**वशिष्ठस्य, **पादौ–**चरणौ, **निपीड्य–**अभिवन्द्य, **सान्ध्यं–**सायङ्कालीन, **विधिम्–**अनुष्ठानं, च, **समाप्य–**सम्पाद्य, **दोहावसाने–**दुग्धदोहनान्ते, **निषण्णाम्–**उपविष्टं, **दोग्ध्रीं–**धेनुम्, एव, **पुनः–**भूयः, **भेजे–**सेवितवान्।

संस्कृत भावार्थ–आश्रमं प्रत्यागत्य दिलीपः सपत्नीकस्य वशिष्ठस्य पादसेवां कृत्वा सन्ध्योपासनमपि विधाय दोहनान्ते सुखोपविष्टां तां नन्दिनीं भूयोऽपि सेवितुम् प्रचक्रमे।

शब्दार्थ –भुजोच्छिन्नरिपुः - अपनी भुजाओं के बल से दुश्मनों का नाश करनेवाला। **सदारस्य** - पत्नी सहित का। गुरु वशिष्ठ और उनकी पत्नी दोनों का। **पादौ निपीड्य** - पैरों को दबाकर, सेवा करके। **सान्ध्यम्** - सायङ्कालीन। **विधिम्** - अनुष्ठान को। **समाप्य** - समाप्त करके। **दोहावसाने** - दुहने के बाद। **निषण्णाम्** - (सुख से) बैठी हुई। **दोग्ध्रीम्** - गाय को। **पुनः भेजे** - फिर से सेवा की।

➡ **प्रसङ्ग–**राजा और रानी द्वारा रात्रि में की जानेवाली नन्दिनी की सेवा का वर्णन है–

तामन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपा-
मन्वास्य गोप्ता गृहिणीसहायः।
क्रमेण सुप्तामनुसंविवेश
सुप्तोत्थितां प्रातरनूदतिष्ठत् ॥24॥

अन्वय–गृहिणीसहायः गोप्ता अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां तां (धेनुम्) अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम् अनुसंविवेश, प्रातः सुप्तोत्थिताम् अनु उदतिष्ठत्।

हिन्दी व्याख्या –स्त्री समेत रक्षा करनेवाले उस राजा ने गाय के पास दीपक तथा पूजा की सामग्रियों को रख दिया। फिर उसके पीछे बैठकर क्रम से उस (नन्दिनी) के सोने के अनन्तर वह सोया और प्रातःकाल उसके जागने पर स्वयं भी जागा।

संस्कृत व्याख्या–गृहिणीसहायः–पत्नीसहितः **गोप्ता–**रक्षिता, **अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपाम्–**अन्तिके समीपे नयस्ताः स्थापिताः बलयः भोज्यपदार्थाः प्रदीपाः दीपकाश्च यस्याः तादृशीं, **ताम्–**नन्दिनीम्, **अन्वास्य–**अनूपविश्य, **क्रमेण–**परिपाट्या, **सुप्तां–**निद्रिताम्, **अनु–** पश्चात्, **संविवेश–**सुष्वाप, **प्रातः–**प्रभाते, **सुप्तोत्थितां–**स्वापानन्तरमुत्थितां जागरितामिति यावत्, **अनु–**पश्चात्, **उदतिष्ठत्–**उत्थितवान्।

संस्कृत भावार्थ–तस्याः निकटे पूजासामग्रीं निधाय स्थितायाः तस्याः पृष्ठतः सुदक्षिणादिलीपौ स्थितवन्तौ, क्रमेण तावपि निद्रां प्राप्तवन्तौ, प्रातःकाले सुप्तोत्थितायाम् तस्याम् तावपि उदतिष्ठताम् इति भावः।

शब्दार्थ – गृहिणीसहायः - स्त्री सहित। **गोप्ता** - रक्षक। **अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपाम्** - जिसके पास ही बलि (पूजा की सामग्री) तथा दीपक रखा है उस (गाय) को। **अन्वास्य** - पीछे बैठकर। **क्रमेण** - क्रम से। **सुप्ताम्** - सोयी हुई को। **अनुसंविवेश** - बाद में सोते थे। उसके सो जाने पर सोते थे। **सुप्तोत्थिताम्** - सोकर उठी हुई को। **अनु उदतिष्ठत्** - बाद में उठते थे। जब वह नन्दिनी सोकर उठती थी तब वह भी उठते थे। नन्दिनी के सोकर उठने के बाद राजा भी सोकर उठते थे।

➡ **प्रसङ्ग–**नन्दिनी की सेवा में निरत रहते राजा के इक्कीस दिन बीत गये–

इत्थं व्रतं धारयतः प्रजार्थं,
समं महिष्या महनीयकीर्तेः।
सप्त व्यतीयुस्त्रिगुणानि तस्य,
दिनानि दीनोद्धरणोचितस्य ॥25॥

अन्वय–इत्थं प्रजार्थं महिष्या समं व्रतं धारयतः महनीयकीर्तेः दीनोद्धरणोचितस्य तस्य सप्त त्रिगुणानि दिनानि व्यतीयुः।

हिन्दी व्याख्या – इस प्रकार सन्तान के निमित्त स्त्री सहित व्रत धारण करनेवाले, महाकीर्तिमान्, दीनों के उद्धार करनेवाले उस राजा के इक्कीस दिन बीत गये।

संस्कृत व्याख्या–इत्थम्–अनेन प्रकारेण, **प्रजार्थं–**पुत्राय, **महिष्या–**अभिषिक्तपत्न्या सुदक्षिणया, **समं–**सह, **व्रतं–**नियमं, **धारयतः–**पालयतः, **महनीयकीर्तेः–**महनीया पूज्या कीर्तिःयशो यस्य तादृशस्य, **दीनोद्धरणोचितस्य–**दीनजनरक्षणतत्परस्य, **तस्य–**दिलीपस्य, **सप्तत्रिगुणानि–** एकविंशति, **दिनानि–**दिवसाः, **व्यतीयुः–**व्यतिक्रान्तानि समाप्तानीत्यर्थः।

संस्कृत भावार्थ–दीनवत्सलः पुण्यकीर्तिः सपत्नीकः दिलीपः पुत्रलाभाय अनेन प्रकारेण नन्दिनीसेवारूपं व्रतम् कुर्वन् एकविंशति दिनानि निनाय।

शब्दार्थ – इत्थम् - इस प्रकार से, पूर्वोक्त प्रकार से। **प्रजार्थम्** - सन्तान के लिए। **धारयतः** - व्रत का पालन करते हुए (राजा) का। **महिष्या समम्** - रानी के साथ। **महनीयकीर्तेः** - पूज्य कीर्तिवाले राजा का। **दीनोद्धरणोचितस्य** - गरीबों का उद्धार करने में समर्थ या तत्पर। जो दीनों की रक्षा करने के लिए सदैव तैयार रहता था। **सप्तत्रिगुणानि** - सात के तिगुने अर्थात् इक्कीस। **व्यतीयुः** - बीत गये।

➡ **प्रसङ्ग–**बाईसवें दिन नन्दिनी दिलीप की परीक्षा लेने का उपक्रम करती है–

अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं
जिज्ञासमानामुनिहोमधेनुः।
गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं
गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥26॥

अन्वय–अन्येद्युः आत्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं गौरीगुरोः गह्वरम् आविवेश।

हिन्दी व्याख्या – दूसरे दिन अर्थात् बाईसवें दिन मुनि की वह होमधेनु अपने अनुचर राजा की भक्ति की परीक्षा करने के लिए गङ्गा के झरने के पास हिमालय की उस गुफा में घुसी जिसमें घास उगी हुई थी।

संस्कृत व्याख्या–अन्येद्युः–अन्यस्मिन् दिवसे, **आत्मानुचरस्य–**आत्मनः स्वस्य अनुचरस्य सेवकस्य, **भावम्–**अभिप्रायं, **जिज्ञासमाना–**ज्ञातुमिच्छन्ती, **मुनिहोमधेनुः–**मुनेः वशिष्ठस्य होमधेनुः हवनसाधनभूता गौः (नन्दिनी), **गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पं–**गङ्गाप्रवाहपतनसमीपोत्पन्नमृदुतृणं, **गौरीगुरोः–**हिमालयस्य, **गह्वरं–**गुहाम्, **आविवेश–**प्रविष्टवती।

संस्कृत भावार्थ–द्वाविंशे दिने धेनुः निजसेवकस्याभिप्रायं ज्ञातुमिच्छन्ती सुरसरित्प्रपातान्तविरूढनवाङ्कुरां हिमालयगुहाम् आविवेश।

शब्दार्थ –अन्येद्युः - दूसरे दिन अर्थात् बाईसवें दिन। **आत्मानुचरस्य** - अपने सेवक के अर्थात् राजा के। **भावम्** - अभिलाषा, भक्ति। मुझमें राजा की भक्ति है या नहीं। **जिज्ञासमाना** - जानने की इच्छुक। **मुनिहोमधेनुः** - मुनि के हवन की सामग्री प्रदान करनेवाली गाय अर्थात् नन्दिनी। **गङ्गाप्रपातान्तविरूढशष्पम्**- जिस (गुफा में) गङ्गा के झरने के पास उगी हुई कोमल घासवाली। **गौरीगुरोः** - पार्वती के पिता के अर्थात् हिमालय की। **गह्वरम्** - गुफा में। **आविवेश** - घुस गयी।

➡ **प्रसङ्ग–**नन्दिनी पर सिंह के आक्रमण का वर्णन–

सा दुष्प्रधर्षा मनसापि हिंस्रै-
रित्यद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन।
अलक्षिताभ्युत्पतनो नृपेण
प्रसह्य सिंहः किल तां चकर्ष ॥27॥

अन्वय–सा हिंस्रैः मनसापि दुष्प्रधर्षा इति अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन नृपेण अलक्षिताभ्युत्पतनः सिंहः तां प्रसह्यं चकर्ष किल।

हिन्दी व्याख्या – यह नन्दिनी हिंसक व्याघ्रादि दुष्ट जीवों द्वारा मन से भी बड़ी कठिनाई से कष्ट पहुँचाने योग्य है। ऐसा सोचकर राजा निश्चिन्त होकर हिमालय की शोभा को देखने में दृष्टि लगाये हुए था। उसी बीच में सहसा एक सिंह, जिसका कूदना राजा न देख सका, उस गाय को खींच ले गया।

संस्कृत व्याख्या– सा–नन्दिनी, **हिंस्रैः–**हिंसकैः जन्तुभिः, **मनसापि–**चित्तेनापि, **दुष्प्रधर्षा–**दुर्दमना, **इति–**अस्माद्धेतोः,

अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन–अद्रेः हिमालयस्य शोभायां सौन्दर्ये प्रहितं दत्तम् ईक्षणं दृष्टिः येन तादृशेन, **नृपेण**–राज्ञा, **अलक्षिताभ्युत्पतनः**–अलक्षितम् अदृष्टम् अभ्युत्पतनमाभिमुख्येन आक्रमणं यस्य तादृशः, **सिंहः**–केसरी, **तां**–नन्दिनीं, **प्रसह्य**–हठात्, **चकर्ष**–आकृष्टवान्, **किल**–इत्यलीके।

संस्कृत भावार्थ– धेनुः व्याघ्रादिभिः मनसापि अगम्या इति हेतोः पर्वतशोभायां दत्तदृष्टिना दिलीपेन सिंहस्याभ्युत्पतनम् न दृष्टम्। तदैव सिंहः हठात् तां चकर्ष। शैलशोभावलोकने अतीव दत्तचित्तत्वाद्राजा सिंहस्याक्रमणं द्रष्टुं नाशक्नोत्।

शब्दार्थ – हिंस्रैः - हिंसक पशुओं द्वारा अर्थात् सिंह व्याघ्रादिकों से। **मनसापि दुष्प्रधर्षा** - मन से भी कठिनता से आक्रमण करने योग्य। सिद्धिरूपा नन्दिनी पर हिंसक पशु मन से भी आक्रमण नहीं कर सकते थे, प्रत्यक्ष आक्रमण करना तो दूर रहा। **अद्रिशोभाप्रहितेक्षणेन** - पर्वत की शोभा देखने में दृष्टि लगाये राजा से। **अलक्षिताभ्युत्पतनः** - जिसका आक्रमण (कूदना) नहीं देखा गया। **चकर्ष** - खींच ले गया। **प्रसह्य** - बलपूर्वक। **किल** -अलीके, मल्लिनाथ का कथन है कि यह आक्रमण माया द्वारा रचा हुआ था, वास्तविक नहीं था, अतः किल शब्द का प्रयोग हुआ है।

➡ **प्रसङ्ग**–नन्दिनी के आर्त्तनाद ने राजा का ध्यान गाय की ओर आकृष्ट किया।

तदीयमाक्रन्दितमार्त्तसाधो-
र्गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्।
रश्मिष्विवादाय नगेन्द्रसक्तां,
निवर्तयामास नृपस्य दृष्टिम् ॥28॥

अन्वय–गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् तदीयम् आक्रन्दितम् आर्त्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्तां दृष्टिम् रश्मिषु आदाय इव निवर्तयामास।

हिन्दी व्याख्या – गुफा में गूँज उठने के कारण गाय के तीव्र आर्त्तनाद ने दुःखियों के रक्षक उस राजा की दृष्टि को, जो पर्वत की शोभा देखने में लगी हुई थी, अपनी (गाय की) ओर उस तरह लौटाया मानो रस्सी में बाँधकर किसी को अपनी ओर खींच ले।

संस्कृत व्याख्या– गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम्–गुहायां गह्वरे निबद्धः व्याप्तः प्रतिशब्दः प्रतिध्वनिः तेन दीर्घम् उच्चतरं, **तदीयं**–तस्याः नन्दिन्याः इदम्, **आक्रन्दितम्**–आर्त्तनादम्, **आर्त्तसाधोः**–आर्त्तेषु विपन्नेषु साधुः हितकारी तस्य, **नृपस्य**–राज्ञः, **नगेन्द्रसक्तां**–नगेन्द्रे पर्वतराजे हिमालये सक्तां लग्नां, **दृष्टिम्**–ईक्षणं, **रश्मिषु**–प्रग्रहेषु, **आदाय इव**–गृहीत्वा इव, **निवर्तयामास**–अपसारयामास।

संस्कृत भावार्थ– सिंहाक्रमणेन गुहायां प्रतिहतेन प्रतिध्वनिना दीर्घ नन्दिन्या आक्रन्दनं शैलशोभादर्शनलग्नां दिलीपदृष्टिं तथैव निवर्तयामास यथा सारथिः अन्यतो धावन्तम् अश्वं रश्मिभिः आकृष्य निवर्तयति।

शब्दार्थ – गुहानिबद्धप्रतिशब्ददीर्घम् - गुफा में उत्पन्न हुई गूँज के कारण अधिक तीव्र। **तदीयम्** - गाय का। **आक्रन्दितम्** - आर्त्तनाद, पीड़ायुक्त स्वर। **आर्त्तसाधोः** - दुःखियों की रक्षा करनेवाले का। **नगेन्द्रसक्ताम्** - पर्वतराज हिमालय में लगी हुई। **दृष्टिम्** - आँख। **रश्मिषु** - रस्सी से। **आदाय इव** - मानो बाँधकर। **निवर्त्तयामास** - लौटाया। जैसे कोई किसी को रस्सी से बाँधकर लौटाता है। अथवा जैसे लगाम पकड़कर किसी घोड़े को लौटाया जाता है, उसी प्रकार राजा की दृष्टि को गाय के आर्त्तनाद ने उस ओर से (पर्वत की शोभा देखने से) अपनी ओर लौटा लिया। तात्पर्य यह है कि गाय का आर्त्तनाद सुनकर राजा उसकी ओर देखने लगे।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा ने गाय पर बैठे हुए एक सिंह को देखा–

स पाटलायां गवि तस्थिवासं
धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां
लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम् ॥29॥

अन्वय–धनुर्धरः सः पाटलायां गवि तस्थिवासम् केसरिणं सानुमतः धातुमय्याम् अधित्यकायाम् प्रफुल्लम् लोध्रद्रुमम् इव ददर्श।

हिन्दी व्याख्या – धनुष को धारण करनेवाले राजा दिलीप ने लाल रङ्ग की गाय के ऊपर बैठे हुए सिंह को पहाड़ की गेरूमयी शिखर-भूमि के ऊपर उगे हुए लोध्र वृक्ष की भाँति देखा।

संस्कृत व्याख्या– धनुर्धरः–चापधारी, **सः**–दिलीपः, **पाटलायां**–रक्तवर्णायां, **गवि**–धेनौ (नन्दिन्यां), **तस्थिवांसं**–स्थितं, **केसरिणं**–सिंहं, **सानुमतः**–पर्वतस्य, **धातुमय्यां**–गैरिकवत्याम्, **अधित्यकायाम्**–ऊर्ध्वभूमौ, **प्रफुल्लं**–विकसितं, **लोध्रद्रुमं**–लोध्रनामकं वृक्षमिव, **ददर्श**–अपश्यत्।

संस्कृत भावार्थ– दिलीपः रक्तवर्णायां नन्दिन्यामाक्रम्य स्थितं सिंहम् पर्वतस्य गैरिकमय्याम् ऊर्ध्वभूमौ विकसितं लोध्रद्रुममिवापश्यत्।

शब्दार्थ – धनुर्धरः - धनुष को धारण करनेवाला। **पाटलायाम्** - लाल रङ्ग की। **तस्थिवांसम्** - बैठे हुए। **केसरिणम्** - सिंह को। **सानुमतः** - पर्वत की। **धातुमय्याम्** - गेरू से परिपूर्ण। **अधित्यकायाम्** - ऊपर की जमीन में। पर्वत की ऊपरी भूमि को अधित्यका और निचली या समीपवर्ती भूमि को उपत्यका कहते हैं। **प्रफुल्लम्** - उगा हुआ। **लोध्रद्रुमम्** - लोध्र नाम का पेड़।

➡ **प्रसङ्ग**–राजा ने बाण से सिंह को मारने का प्रयत्न किया–

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी
वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा-
दुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धतारिः ॥३०॥

अन्वय–ततः मृगेन्द्रगामी शरण्यः प्रसभोद्धतारिः नृपतिः जाताभिषङ्गः सन् वध्यस्य मृगेन्द्रस्य वधाय निषङ्गात् शरम् उद्धर्तुम ऐच्छत्।

हिन्दी व्याख्या – तब (सिंह को देखने के बाद) सिंह के समान चलनेवाले शरणागतवत्सल, शत्रुओं का बलपूर्वक नाश करनेवाले, पराभव पाये हुए उस राजा ने वध योग्य सिंह को मारने के लिए तरकश से बाण निकालना चाहा।

संस्कृत व्याख्या– ततः–सिंहदर्शनानन्तरम्, **मृगेन्द्रगामी**–सिंहगतिः, **शरण्यः**–शरणागतपालकः, **प्रसभोद्धतारिः**–प्रसभेन हठात् उद्धृताः उन्मूलिताः अरयः शत्रवो येन तादृशः, **नृपतिः**–राजा, **जाताभिषङ्गः**–प्राप्तपराभवः (सन्), **वध्यस्य**–मारणीयस्य, **मृगेन्द्रस्य**–सिंहस्य, **वधाय**–हननाय, **निषङ्गात्**–तूणीरात्, **शरं**–बाणम्, **उद्धर्तुं**–ग्रहीतुम्, **ऐच्छत्**–अवाञ्छत्।

संस्कृत भावार्थ– विपन्नरक्षको को राजा सिंहकृतं नन्दिनीप्रधर्षणारूपमपमानं नैव सेहे। अतः अपमानकारिणम् तं वध्यं सिंहम् हन्तुम् तूणीरात् बाणम् गृहीतुम् इयेष।

शब्दार्थ – ततः - तब, सिंह को देखने के बाद। **मृगेन्द्रगामी** - सिंह के समान चलनेवाला। **शरण्यः** - शरण में आये हुए की रक्षा करने में निपुण। **प्रसभोद्धतारिः** - बलपूर्वक शत्रुओं का नाश करनेवाला। **जाताभिषङ्गः** - जिसका अपमान हुआ हो। सिंह ने जो गाय पर आक्रमण किया था यही मानो राजा का अपमान या पराभव था। **वध्यस्य** - वध करने योग्य। सिंह ने गाय पर आक्रमण किया था, इसलिए वह वध करने योग्य था। **मृगेन्द्रस्य** - सिंह के। **निषङ्गात्** - तरकश से। **उद्धर्तुम्** - निकालने के लिए। **ऐच्छत्** - इच्छा की। राजा दीन जन-पालक था, राजा के सामने सिंह ने जो गाय के ऊपर आक्रमण किया मानो वह राजा का अपमान किया। इसीलिए उस अपमान करनेवाले सिंह को राजा ने मारना चाहा।

➡ **प्रसङ्ग**–नन्दिनी की माया से राजा का हाथ बाणों से चिपक गया–

वामेतरस्तस्य करः प्रहर्तु-
र्नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे ।
सक्ताङ्गुलिः सायकपुङ्ख एव
चित्रार्पितारम्भ इवावतस्थे ॥३१॥

अन्वय–प्रहर्तुः तस्य वामेतरः करः नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे सायकपुङ्खे एव सक्ताङ्गुलिः चित्रार्पितारम्भ इव अवतस्थे।

हिन्दी व्याख्या – जब राजा ने मारने की इच्छा की तो उनके दाहिने हाथ की उँगलियाँ नखों की प्रभा से भूषित कङ्कपत्रवाले बाणों की पूँछ में ही चिपक गयीं और उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो उनके दाहिने हाथ का कार्य चित्र में लिखा हुआ है।

संस्कृत व्याख्या– प्रहर्तुः–प्रहारकर्तुः, **तस्य**–दिलीपस्य, **वामेतरः**–दक्षिणः, **करः**–हस्तः, **नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे**–नखप्रभाभिः नखरश्मिभिः भूषितानि सुशोभितानि कङ्कपत्राणि कङ्कस्य पक्षिविशेषस्य पत्राणि पक्षाः यस्य तस्मिन्, **सायकपुङ्खे**–शरमूले, **एव, सक्ताङ्गुलिः**–सक्ताः लग्ना अङ्गुलयः करशाखाः यस्य तादृशः, **चित्रार्पितारम्भ इव**–चित्रेऽर्पितः लिखितः आरम्भः शरनिष्कासनोद्योगः यस्य तादृश इव, **अवतस्थे**–स्थितोऽभूत्।

संस्कृत भावार्थ– प्रहर्तुः तस्य दक्षिणः करः नखकान्तिभूषितकङ्कपत्रे बाणमूल-प्रदेशे निहिताङ्गुलिः सन् शरोद्धरणोद्योगे चित्रलिखित इव अवतस्थे इति भावः।

शब्दार्थ – प्रहर्तुः - प्रहार करने की इच्छा करनेवाले का। जब दिलीप ने सिंह को मारने की इच्छा की। **वामेतरः** - दाहिना, बायें से भिन्न। **नखप्रभाभूषितकङ्कपत्रे** - नाखूनों की कान्ति से झिलमिलाये हुए हैं कङ्क नामक पक्षी के पंख जिसमें। **सायकपुङ्खे** - बाण की पूँछ में। **सक्ताङ्गुलिः** - जिस हाथ की उँगलियाँ चिपक गयीं। **चित्रार्पितारम्भ इव** - जिसका कार्य तसवीर में खिंचे हुए के समान था। **अवतस्थे** - रह गया। जब राजा ने सिंह को मारने की इच्छा से बाण निकालने के लिए तरकश में अपना दाहिना हाथ डाला तो उनकी उँगलियाँ बाण के मूल भाग में जिसमें कङ्कपत्र लगे थे, फँस गयीं। इस कारण राजा का हाथ इधर-उधर न हो सका और राजा भी जड़वत् वहाँ खड़े रहे। उस समय ऐसा मालूम हो रहा था मानो वह दृश्य तसवीर में खिंचा हुआ है। क्योंकि जिस प्रकार चित्रलिखित वस्तु इधर-उधर हिल-डुल नहीं सकती, उसी प्रकार हाथ भी हिल-डुल नहीं सकता था।

➡ **प्रसङ्ग**–दिलीप कुछ कर न सकने के कारण अपने तेज से जलने लगे–

बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्यु-
रभ्यर्णमागस्कृतमस्पृशद्भिः।
राजा स्वतेजोभिरदह्यतान्त-
र्भोगीव मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः ॥3 2॥

अन्वय–बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः राजा अभ्यर्णम् आगस्कृतम् अस्पृशद्भिः स्वतेजोभिः मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः भोगी इव अन्तः अदह्यत।

हिन्दी व्याख्या – हाथ के रुक जाने के कारण राजा का क्रोध और भी बढ़ गया और सामने उपस्थित अपराधी (सिंह) को स्पर्श न करनेवाले अपने तेज से वह उस सर्प की भाँति भीतर-ही-भीतर जल उठे जिसका पराक्रम मन्त्र और ओषधि (जड़ी-बूटियों) से बाँध दिया गया है।

संस्कृत व्याख्या– बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः–बाहोः भुजस्य प्रतिष्टम्भेन प्रतिबन्धेन विवृद्धः उद्दीप्तः मन्युः क्रोधो यस्य तादृशः, **राजा**–दिलीपः, **अभ्यर्णम्**–अन्तिकम्, **आगस्कृतम्**–अपराधिनम्, **अस्पृशद्भिः**–अनामृशद्भिः, **स्वतेजोभिः**–निजवचोभिः, **मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः**–मन्त्रौषधिभ्यां रुद्धं प्रतिबद्धं वीर्यं सामर्थ्यं यस्य तादृशः, **भोगी इव**– सर्प इव, **अन्तः**–अभ्यन्तरे, **अदह्यत**–दग्धोऽभवत्।

संस्कृत भावार्थ– बाहुस्तम्भेन प्रवृद्धरोषो दिलीपः समीपस्थमप्यपराधकारिणं सिंहम् हन्तुमसमर्थो मन्त्रौषधिसंरुद्धपराक्रमः सर्प इव स्वतेजोभिरतप्यत इति भावः।

शब्दार्थ – बाहुप्रतिष्टम्भविवृद्धमन्युः - हाथ के रुक जाने के कारण क्रोध बढ़ गया है जिसका, ऐसा वह राजा। **अभ्यर्णम्** - समीप में स्थित। **आगस्कृतम्** - अपराधी। **अस्पृशद्भिः** - न छूनेवाले, प्रहार करने में असमर्थ। **स्वतेजोभिः** - अपने तेज से। राजा सामने खड़े हुए अपराधी को मार न सका, इस कारण अपने तेज से वह भीतर-ही-भीतर जल उठा। **मन्त्रौषधिरुद्धवीर्यः** - मन्त्र और ओषधियों से रुके हुए पराक्रमवाले साँप की तरह। **भोगी** - साँप। **अन्तः अदह्यत** - भीतर-ही-भीतर जल उठा।

➡ **प्रसङ्ग**–सिंह राजा से मनुष्य की वाणी में बोला–

तमार्यगृह्यं निगृहीतधेनु-
र्मनुष्यवाचा मनुवंशकेतुम्।

विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौ
सिंहोरुसत्त्वं निजगाद सिंहः ॥33॥

अन्वय–निगृहीतधेनुः सिंहः, आर्यगृह्यं, मनुवंशकेतुं सिंहोरुसत्त्वम् आत्मवृत्तौ विस्मितम् तं मनुष्यवाचा विस्माययन् निजगाद।

हिन्दी व्याख्या – गाय को पीड़ित करनेवाला सिंह सज्जनों द्वारा माननीय, मनुवंश के पताका रूप, सिंह के समान बलवान् और अपने (बाहुस्तम्भरूप) व्यापार के विषय में आश्चर्य करनेवाले उस राजा को पुनः चकित करता हुआ मनुष्य-वाणी में बोला।

संस्कृत व्याख्या– निगृहीतधेनुः–निगृहीता पीडिता धेनुर्येन तादृशः, **सिंहः–**केसरी, **आर्यगृह्यम्–**आर्याणां सतां गृह्यां पक्ष्यं, **मनुवंशकेतुं–**मनोः वैवस्वतस्य वंशः कुलं तस्य केतुं ध्वजं, **सिंहोरुसत्त्वं–**सिंहसदृशपराक्रमम्, **आत्मवृत्तौ–**आत्मनः स्वस्य वृत्तिः - बाहुप्रतिष्टम्भरूपा दशा तस्यां विषये, **विस्मितं–**चकितं, **तं–**राजानं, **मनुष्यवाचा–**मनुष्यस्य मानवस्य वाचा वाण्या, **विस्माययन्–**आश्चर्यं प्रापयन्, **निजगाद–**उवाच।

संस्कृत भावार्थ– सिंहः गां निपीडयन् सतां सम्मतम् मनुकुलकेतुं भुजस्तम्भरूपे व्यापारे चकितम् महाबलिष्ठं दिलीपम् मनुष्यभाषया आश्चर्यं प्रापयन् उवाच इति भावः।

शब्दार्थ – निगृहीतधेनुः - गाय के ऊपर आक्रमण करनेवाला सिंह। **आर्यगृह्यम्** - सज्जनों द्वारा मान्य। **मनुवंशकेतुम्** - मनुवंश के शिरोमणि। **सिंहोरुसत्त्वम्** - सिंह के समान महाबलवान्। **आत्मवृत्तौ विस्मितम्** - अपने कार्य पर विस्मित हुए दिलीप को। **विस्माययन्** - फिर से चकित करता हुआ। दिलीप को पहले से ही आश्चर्य हो रहा था कि उनका हाथ कैसे फँस गया, फिर सिंह जब मनुष्य की बोली में बोला तो उन्हें और भी आश्चर्य हुआ। **मनुष्यवाचा** - मनुष्य की बोली में। **निजगाद** - बोला।

➡ **प्रसङ्ग**–सिंह राजा से कहता है–

अलं महीपाल ! तव श्रमेण
प्रयुक्तमप्यस्त्रमितो वृथा स्यात्।
न पादपोन्मूलनशक्ति रंहः
शिलोच्चये मूर्च्छति मारुतस्य॥34॥

अन्वय–महीपाल तव श्रमेण अलम् इतः प्रयुक्तम् अपि अस्त्रम् वृथा स्यात् हि मारुतस्य पादपोन्मूलनशक्ति रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति।

हिन्दी व्याख्या – हे पृथ्वी के पालन करनेवाले महाराज दिलीप! आपका श्रम करना व्यर्थ है, अतः रहने दीजिये। मेरे ऊपर छोड़ा हुआ अस्त्र भी व्यर्थ हो जायगा। पेड़ों के उखाड़ने में समर्थ वायु का वेग पर्वतों पर नहीं चलता। अर्थात् वह पर्वतों को नहीं उखाड़ सकता।

संस्कृत व्याख्या– महीपाल–राजन् !, **तव–**ते, **श्रमेण–**आयासेन, **अलं–**न किञ्चित् साध्यम्, **इतः–**अस्मिन् मयि, **प्रयुक्तमपि–**प्रक्षिप्तमपि, **अस्त्रम्–**आयुधं, **वृथा–**व्यर्थं, **स्यात्–**भवेत्, **हि–**यतः, **मारुतस्य–**पवनस्य, **पादपोन्मूलनशक्ति–**पादपानां वृक्षाणाम् उन्मूलने त्रोटने, **शक्तिः–**सामर्थ्यं यस्य तादृशं, **रंहः–**वेगः, **शिलोच्चये–**पर्वते, **न मूर्च्छति–**न प्रभवति।

संस्कृत भावार्थ– हे पृथ्वीपते ! मयि रुद्रानुचरे तव श्रमेण किमपि न भविष्यति। किन्तु मयि प्रेरितमप्यस्त्रं व्यर्थं भविष्यति। वृक्षनाशनसमर्थः पवनस्य वेगः पर्वते विफलो भवति।

शब्दार्थ – महीपाल - राजन्!। **तव श्रमेण अलम्** - आप परिश्रम न करें, रहने दीजिये। **इतः** - मेरे ऊपर। **प्रयुक्तम्** - चलाया हुआ। **वृथा स्यात्** - बेकार होगा। **मारुतस्य** - वायु का। **पादपोन्मूलनशक्ति** - पेड़ों को उखाड़ने की शक्तिवाला। **रंहः** - वेग। **शिलोच्चये** - पर्वत पर। **न मूर्च्छति** - काम नहीं देती, असफल होती है। वृक्षों को उखाड़नेवाली पवन की शक्ति पहाड़ों पर काम नहीं देती।

➡ **प्रसङ्ग**–सिंह राजा को अपना परिचय दे रहा है–

कैलासगौरं वृषभारुरुक्षोः
पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्।

अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः
कुम्भोदरं नाम निकुम्भमित्रम् ॥35॥

अन्वय–कैलासगौरं वृषम् आरुरुक्षोः अष्टमूर्तेः पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम् निकुम्भमित्रम् कुम्भोदरं नाम किङ्करम् माम् अवेहि।

हिन्दी व्याख्या – कैलास पर्वत की तरह सफेद बैल पर चढ़ने की इच्छा करनेवाले अष्टमूर्ति शिव जी के चरण रखने के कारण पवित्र पीठवाले मुझको तू निकुम्भ का मित्र कुम्भोदर नामवाला सेवक जान।

संस्कृत व्याख्या– कैलासगौरं–कैलासः तन्नामकः पर्वतः स इव गौरः शुभ्रवर्णः तं, **वृषं–**वृषभम्, **आरुरुक्षोः–**आरोढुमिच्छोः, **अष्टमूर्तेः–**शिवस्य, **पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठं–**पदयोः चरणयोः अर्पणं न्यासः तदेवानुग्रहः प्रसादः कृपा वा तेन पूतं पृष्ठं पृष्ठभागो यस्य तं, **निकुम्भमित्रं–**निकुम्भाख्यशिवानुचरसुहृद्, **कुम्भोदरं नाम–**कुम्भोदरनामकं, **किङ्करं–**सेवकम्, **अवेहि–**जानीहि।

संस्कृत भावार्थ– श्वेतवृषभोपरि सर्वदा आरोहणं कर्तुमिच्छोः शिवस्य पादन्यासेन पूतपृष्ठभागं निकुम्भमित्रम् कुम्भोदरं नाम रुद्रानुचरम् मां विद्धि।

शब्दार्थ – कैलासगौरम् - कैलास पर्वत के समान श्वेत। **वृषभ्** - बैल, (नन्दी बैल पर शङ्कर जी सवारी करते हैं)। **आरुरुक्षोः** - चढ़ने की इच्छा करनेवाले। **अष्टमूर्तेः** - शिव का। **पादार्पणानुग्रहपूतपृष्ठम्** - पैर रखने की कृपा से पवित्र पीठवाले (को)। **निकुम्भमित्रम्** - निकुम्भ का मित्र। **किङ्करम्** - नौकर। **कुम्भोदरम् नाम** - कुम्भोदर नाम का। **अवेहि** - जानो।

➡ **प्रसङ्ग–**सिंह राजा को सामने के एक देवदारु वृक्ष का परिचय दे रहा है—

अमुं पुरः पश्यसि देवदारुं
पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।
यो हेमकुम्भस्तननिःसृतानां
स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः॥36॥

अन्वय–पुरः अमुं देवदारुं पश्यसि असौ वृषभध्वजेन पुत्रीकृतः यः स्कन्दस्य मातुः हेमकुम्भस्तननिःसृतानां रसज्ञः।

हिन्दी व्याख्या – हे राजन् ! आगे स्थित इस देवदारु के पेड़ को देख रहे हो, इसे शङ्कर जी ने पुत्र माना है। इसने स्वामिकार्तिकेय की माता (पार्वती) के सोने के घटरूपी स्तनों से निकले हुए जल का स्वाद लिया है।

संस्कृत व्याख्या– पुरः–अग्रे, **अमुम्–**एनं, **देवदारुं–**तमन्नामकं, वृक्षं, **पश्यसि–**अवलोकयसि, **असौ–**देवदारुः, **वृषभध्वजेन–**शिवेन, **पुत्रीकृतः–**पुत्रत्वेन स्वीकृतः, **यः–**देवदारुः, **स्कन्दस्य–**स्वामिकार्तिकेयस्य, **मातुः–**जनन्याः, **हेमकुम्भस्तननिःसृतानां–**स्वर्णघटकुचनिर्गतानां, **पयसां–**जलानां, **रसज्ञः–**स्वादवित् अस्ति।

शब्दार्थ – पुरः – सामने। **अमुम्** – इसको। **वृषभध्वजेन** – बैल की ध्वजावाला; शिव। **पुत्रीकृतः** – पुत्र के समान मान लिया गया। **स्कन्दस्यः मातुः** – षडानन (स्वामिकार्तिकेय) की माता का। **हेमकुम्भस्तननिःसृतानाम्** – सुवर्णघटरूपी स्तन से निकला हुआ जल। **पयसां रसज्ञः** – जल का आस्वादन किया है। **हेमकुम्भस्तननिः सृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः** – स्वर्णकलश के जल से पार्वती जी उसे सींचती थीं। पार्वती जी के स्वर्णकलशरूपी स्तन के जल से सींचा हुआ।

➡ **प्रसङ्ग–**हाथी द्वारा देवदारु वृक्ष को रगड़ने पर पार्वती ने शोक किया था—

कण्डूयमानेन कटं कदाचिद्
वन्यद्विपेनोन्मथिता त्वगस्य।
अथैनमद्रेस्तनया शुशोच
सेनान्यमालीढमिवासुरास्त्रैः ॥37॥

अन्वय–कदाचित् कटं कण्डूयमानेन वन्यद्विपेन अस्य त्वग् उन्मथिता अथ अद्रेः तनया असुरास्त्रैः आलीढंसेनान्यम् इव एनं शुशोच।

हिन्दी व्याख्या – एक समय अपने गण्डस्थल को खुजलाते हुए किसी जङ्गली हाथी ने इसकी छाल को उधेड़ डाला।

इसे देख पार्वती ने इस प्रकार शोक किया जैसा कि (देवासुर संग्राम में) राक्षसों के शस्त्रों से घायल स्वामिकार्तिकेय को देखकर किया था।

संस्कृत व्याख्या– कदाचित्–कस्मिंश्चित्समये, **कटं**–कपोलं, **कण्डूयमानेन**–घर्षयता, **वन्यद्विपेन**–आरण्यगजेन, **अस्य**–देवदारोः, **त्वक्**–त्वचा, **उन्मथिता**–उत्पाटिता, **अथ**–ततः, **अद्रेः तनया**–पार्वती, **असुरास्त्रैः**–दैत्यायुधः, **आलीढं**–क्षतं, **सेनान्यं**–स्कन्दम्, **इव**–यथा, **एनं**–देवदारुं, **शुशोच**–शोचितवती।

संस्कृत भावार्थ– एकदा कश्चिद् वन्यद्विपः गण्डं कण्डूयमानः अस्य देवदारोः वल्कलम् उत्पाटितवान् तदुपश्रुत्य पार्वती शोकार्त्ता सती तथैव विललाप यथा असुरास्त्रैः क्षतम् कार्तिकेयं दृष्ट्वा विलपिवती।

शब्दार्थ – कदाचित् – एक समय। **कण्डूयमानेन** – खुजलाते हुए। **कटम्** – गण्डस्थल। **वन्यद्विपेन** – जङ्गली हाथी के द्वारा। **त्वक्** – खाल, पेड़ की छाल। **उन्मथिता** – उधेड़ दी गयी। जब हाथी अपने गण्डस्थल की खुजलाहट को दूर करने के लिए पेड़ से उसे रगड़ने लगा उस समय पेड़ की छाल उधड़ गयी। **अद्रेः तनया** – हिमालय की कन्या, पार्वती। **अथ** – तब इस घटना को देखकर। **एनं शुशोच** – देवदारु का सोच किया, इसे देखकर दुःखी हुईं। **असुरास्त्रैः आलीढम्** - राक्षसों के अस्त्रों से घायल, क्षत-विक्षत। एक बार देवासुर-सङ्ग्राम में स्कन्द राक्षसों के अस्त्रों से बहुत घायल हो गये थे। जिस प्रकार उनको घायल देखकर पार्वती दुःखी हुई थीं, उसी प्रकार उधड़ी हुई छालवाले देवदारु को भी देखकर उन्होंने शोक किया। **सेनान्यम्** - देवताओं के सेनापति स्वामिकार्तिकेय को।

➡ **प्रसङ्ग**–सिंह राजा से कह रहा है कि उस देवदारु की रक्षा के लिए शङ्कर ने मुझे नियुक्त किया है—

तदाप्रभृत्येव वनद्विपानां
त्रासार्थमस्मिन्नहमद्रिकुक्षौ।
व्यापारितः शूलभृता विधाय
सिंहत्वमङ्कागतसत्त्ववृत्तिः॥३८॥

अन्वय–तदाप्रभृति एव वनद्विपानां त्रासार्थं शूलभृता अङ्कागतसत्त्ववृत्तिः सिंहत्वं विधाय अस्मिन् अद्रिकुक्षौ अहं व्यापारितः।

हिन्दी व्याख्या – उसी दिन से जङ्गली हाथियों को डराने के लिए महादेव जी ने मुझे सिंह का रूप देकर इस गुफा में नियुक्त किया और दैवयोग से जो जीव मेरे पास आ जायँ उन्हें खाकर मैं अपना जीवन-निर्वाह करूँ, यही मेरी वृत्ति उन्होंने दी है।

संस्कृत व्याख्या–तदा प्रभृति एव–तत्कालादारभ्य एव, **वनद्विपानाम्**–आरण्यकगजानां, **त्रासार्थं**–भयार्थं, **शूलभृता**–शिवेन, **अङ्कागतसत्त्ववृत्तिः**–अङ्कसमीपमागताः प्राप्ताः सत्त्वाः प्राणिनः वृत्तिः जीवनोपायः यस्मिन् तत्, **सिंहत्वं**–मृगेन्द्रत्वं, **विधाय**–कृत्वा, **अस्मिन्**–दृश्यमाने, **अद्रिकुक्षौ**–गिरिगह्वरे, अहं कुम्भोदरः, **व्यापारितः**–नियुक्तः।

संस्कृत भावार्थ– तस्मात्कालादारभ्य वन्यगजान् त्रासयितुं शिवः मां सिंहरूपिणं कृत्वा अस्यां पर्वतकन्दरायां नियोजयामास तथा चेति अनुज्ञापितवान् यत् दैववशात् समीपागतजीवाः मम भक्ष्याः भविष्यन्ति।

शब्दार्थ – तदाप्रभृति – उसी समय से। **वनद्विपानाम्** – जङ्गली हाथियों के। **त्रासार्थम्** – डराने के लिए। **शूलभूता** – त्रिशूल धारण करनेवाले (शिव) के द्वारा। **अङ्कागतसत्त्ववृत्ति** – समीप में आये हुए प्राणी ही हैं वृत्ति (जीवनोपाय) जिसकी। **सिंहत्वम्** – सिंह का रूप। शिव ने सिंह का रूप मुझे देकर यह भी निश्चित कर दिया कि जो जन्तु अकस्मात् मेरे पास आ जायँ उन्हें खाकर मैं अपना जीवन-निर्वाह करूँ। **विधाय** – बनाकर। **अद्रिकुक्षौ**– पहाड़ की गुफा में। **व्यापारितः** – नियुक्त किया गया।

➡ **प्रसङ्ग**–सिंह नन्दिनी को अपना पुष्कल आहार बताता है—

तस्यालमेषा क्षुधितस्य तृप्त्यै
प्रदिष्टकाला परमेश्वरेण।
उपस्थिता शोणितपारणा मे
सुरद्विषश्चान्द्रमसी सुधेव॥३९॥

अन्वय–परमेश्वरेण प्रदिष्टकाला उपस्थिता एषा शोणितपारणा सुरद्विषः चान्द्रमसी सुधा इव क्षुधितस्य मे तृप्त्यै अलम्।

हिन्दी व्याख्या – भगवान् ने उसका समय नियत कर दिया था। इसी से यह यहाँ आकर उपस्थित हुई है। जिस प्रकार चन्द्रमा का अमृतपान करने से राहु की तृप्ति हो जाती है, उसी प्रकार इसका खून पीने से मुझ भूखे (सिंह) की भी तृप्ति हो जायगी। यह मेरी क्षुधा के निवारण के लिए पर्याप्त है।

संस्कृत व्याख्या– परमेश्वरेण–शिवेन, **प्रदिष्टकाला**–प्रदिष्ट निर्दिष्टः कालो भोजनवेला यस्याः तादृशी, **उपस्थिता**–प्राप्ता, **एषा**–इयं, **शोणितपारणा**–शोणितस्य रुधिरस्य पारणा व्रतान्तभोजनं, **सुरद्विषः**–राहोः, **चान्द्रमसी**–ऐन्दवी, **सुधा इव**–अमृतमिव, **क्षुधितस्य**–बुभुक्षितस्य, **मे**–मम, **तृप्त्यै**–सन्तोषाय, **अलं**–पर्याप्ता (अस्ति)।

संस्कृत भावार्थ– चिरकालात् क्षुधितस्य अङ्गागतप्राणिवृत्त्या जीवनं यापयतः मे पूर्णरूपेण क्षुधानिवारणाय स्वयमत्र प्राप्ता एषा गोरूपा शोणितपारणा राहोः चन्द्रसम्बन्धि अमृतमिव पर्याप्ता भविष्यति।

शब्दार्थ – परमेश्वरेण – महादेव से। **प्रदिष्टकाला** – भगवान् शङ्कर ने जिसका समय निश्चित कर दिया है कि इसी समय यह मेरा भोजन बनेगी। **उपस्थिता** – आयी है। **एषा शोणितपारणा** – वह शोणितापारणा। **पारणा** – किसी व्रत के बाद जो भोजन किया जाता है वह पारणा कहलाता है। सिंह के कहने का तात्पर्य यह है कि आज गाय का रुधिर ही व्रतपारणा होगा। मैं कई दिन का भूखा हूँ और आज इसे ही खाकर व्रत का पारण करूँगा। **चान्द्रमसी** - चन्द्रमा का। **सुरद्विषः** देवताओं के शत्रु राहु का। ग्रहण लगने पर राहु चन्द्रमा को ग्रसता है और उसका अमृत पीता है। सिंह का कहना है कि जिस प्रकार चन्द्रमा का अमृत पीकर राहु अपनी तृप्ति करता है, उसी प्रकार मैं भी इसका शोणित पीकर अपनी तृप्ति करूँगा। **तस्य मे क्षुधितस्य** - मुझ भूखे की। **तृप्त्यै अलम्** - तृप्ति के लिए काफी है, मेरी तृप्ति उससे हो जायगी।

➡ **प्रसङ्ग–**सिंह राजा को गाय छोड़कर लौट जाने की सलाह देता है—

स त्वं निवर्तस्व विहाय लज्जां
गुरोर्भवान्दर्शितशिष्यभक्तिः।
शस्त्रेण रक्ष्यं यदशक्यरक्ष्यं
न तद्यशः शस्त्रभृतां क्षिणोति ॥40॥

अन्वय–स त्वं लज्जां विहाय निवर्तस्व भवान् गुरोः दर्शितशिष्यभक्तिः अस्ति यद् रक्ष्यं शस्त्रेण अशक्यरक्ष्यं तद् शस्त्रभृतां यशः न क्षिणोति।

हिन्दी व्याख्या – आप लज्जा को छोड़कर लौट जाइये। गुरु के सम्बन्ध में आपने शिष्योचित भक्ति दिखला दी है। जो रक्षणीय वस्तु शस्त्र से नहीं बचायी जा सकती वह शस्त्रधारी की कीर्ति को नष्ट नहीं करती।

संस्कृत व्याख्या– सः –एवमुपायशून्यः, त्वं, **लज्जां**–त्रपां, **विहाय**–त्यक्त्वा, **निवर्तस्व**–परावर्तस्व, **भवान्**–त्वं, **गुरोः**–वशिष्ठस्य, **दर्शितशिष्यभक्तिः**–दर्शिता प्रकाशिता शिष्यस्य अन्तेवासिनः भक्तिः पूज्येष्वनुरागबुद्धिः येन तादृशः, **अस्ति**–विद्यते, यद्, **रक्ष्यं**–रक्षितुं योग्यं, **शस्त्रेण**–आयुधेन, **अशक्यरक्ष्यं**–रक्षितुं न शक्यं, तद्, **रक्ष्यं**–रक्षणीयं (वस्तु), **शस्त्रभृतां**–शस्त्रधारिणां, **यशः**–कीर्तिं, **न क्षिणोति**–न नाशयति।

संस्कृत भावार्थ– हे राजन् ! बाहुस्तम्भत्वात् मद्वधे निरुपायस्त्वं लज्जां त्यक्त्वा स्वाश्रमं याहि। अपि च यद् रक्षणीयं वस्तु शस्त्रेण न रक्ष्यते तद् रक्ष्यं वस्तु नष्टमपि शस्त्रधारिणां कीर्तिं न नाशयति। अतस्तव निजाश्रमगमने न कोऽपि दोषः।

शब्दार्थ – स त्वम् – वह तुम, अर्थात् बाहु रुक जाने से जो मुझे मारने में असमर्थ हो। **लज्जाम्** – सिंह को मार न सकने के कारण लज्जा को। **विहाय** – छोड़कर। **निवर्तस्व** –लौट जाओ। **दर्शितशिष्यभक्तिः** – जिसने शिष्यों के योग्य भक्ति दिखा दी है। **यद् रक्ष्यम्** – रक्षा करने योग्य जो वस्तु। **शस्त्रेणाशक्यरक्ष्यम्** – शस्त्र से नहीं बचायी जा सकती। **तत्** – वह। **शस्त्रभृताम्** – शस्त्र धारण करनेवालों की। **क्षिणोति** – कम करता है। सिंह के कहने का भाव यह है कि आपने तो प्रयत्न किया और गुरु के प्रति शिष्योचित भक्ति भी दिखायी। परन्तु आप गाय की रक्षा नहीं कर सकते, इससे लज्जा छोड़कर वापस चले जाइये। क्योंकि यदि कोई रक्षणीय वस्तु शस्त्र से न बचायी जा सके तो उससे शस्त्रधारी का यश कम नहीं होता।

●●

➨ अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1. कः वनाय धेनुं मुमोच?
उत्तर– नृपदिलीपः वनाय धेनुं मुमोच।

प्रश्न 2. दिलीपः ऋषेः धेनुं वनाय कदा मुमोच?
उत्तर– दिलीपः ऋषेः धेनुं वनाय प्रभाते मुमोच।

प्रश्न 3. प्रजानामधिपः कीदृशीं धेनुं वनाय मुमोच?
उत्तर– प्रजानामधिपः जायाप्रतिग्रहितगन्धमाल्यां पीतप्रतिबद्धवत्सां च धेनुं वनाय मुमोच।

प्रश्न 4. मनुष्येश्वरधर्मपत्नी कीदृशी आसीत्?
उत्तर– मनुष्येश्वरधर्मपत्नी अपांसुलानां धुरि कीर्तनीया आसीत्।

प्रश्न 5. अपांसुलानां धुरि कीर्तनीया का आसीत्?
उत्तर– अपांसुलानां धुरि कीर्तनीया महाराज्ञी सुदक्षिणा आसीत्।

प्रश्न 6. मनुष्येश्वरधर्मपत्नी का इव मार्गम् अन्वगच्छत्?
उत्तर– मनुष्येश्वरधर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।

प्रश्न 7. दिलीपः नन्दिनीं काम् इव जुगोप?
उत्तर– दिलीपः नन्दिनीं गोरूपधराम् उर्वीम् इव जुगोप।

प्रश्न 8. राजा किम्भूतां सौरभेयीं जुगोप?
उत्तर– राजा पयोधरीभूतचतुःसमुद्रां सौरभेयीं जुगोप।

प्रश्न 9. कस्य शरीररक्षा अन्यतः न करोति?
उत्तर– मनोः प्रसूतेः शरीररक्षा अन्यतः न करोति।

प्रश्न 10. मनोः प्रसूतिः कीदृशी आसीत्?
उत्तर– मनोः प्रसूतिः स्ववीर्यगुप्ता आसीत्।

प्रश्न 11. दिलीपेन शेषोऽपि अनुयायिवर्गः केन हेतुना निवर्तितः?
उत्तर– दिलीपेन शेषोऽपि अनुयायिवर्गः 'स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः' इति निवर्तितः।

प्रश्न 12. दिलीपः नन्दिनीसेवायां कथं तत्परोऽभूत्?
उत्तर– दिलीपः आस्वादवद्भिः तृणानां कवलैः कण्डूयनैः दंशनिवारणैः अव्याहतैः स्वैरगतैः नन्दिनीसेवायां तत्परोऽभूत्।

प्रश्न 13. दिलीपः कामिव नन्दिनीम् अन्वगच्छत्?
उत्तर– दिलीपः छाया इव नन्दिनीम् अन्वगच्छत्।

प्रश्न 14. राजा दिलीपो मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् किं करिष्यन्निव दावं विचचार?
उत्तर– राजा दिलीपो मुनिहोमधेनोः रक्षापदेशात् दुष्टसत्त्वान् विनेष्यन्निव दावं विचचार।

प्रश्न 15. मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः प्रसूनैः कम् अवाकिरन्?
उत्तर– मरुत्प्रयुक्ताः बाललताः प्रसूनैः नृपं दिलीपं अवाकिरन्।

प्रश्न 16. हरिण्यः किं विलोकयन्त्योऽक्ष्णां प्रकामविस्तारफलमापुः?
उत्तर– हरिण्यो दिलीपस्य वपुर्विलोकयन्त्योऽक्ष्णां प्रकामविस्तारफलमापुः।

प्रश्न 17. राजा दिलीपः स्व यशः कुत्र अशृणोत्?
उत्तर– राजा दिलीपः स्व यशः कुञ्जेषु अशृणोत्।

प्रश्न 18. कीदृशः पवनः दिलीपः सिषेवे?

उत्तर– अनोकहाकम्पित पुष्पगन्धी पवनः दिलीपः सिषेवे।

प्रश्न 19. दिनान्ते निललाय गन्तुं का प्रचक्रमे?

उत्तर– दिनान्ते निललाय गन्तुं पतङ्गस्य प्रभा मुनेश्च धेनुः प्रचक्रमे।

प्रश्न 20. देवतापित्रतिथिक्रियार्था काऽऽसीत्?

उत्तर– देवतापित्रतिथिक्रियार्था नन्दिनी आसीत्।

प्रश्न 21. कौ उभौ कस्मात्तपोवनावृत्तिपथम् अलङ्घक्रतुः?

उत्तर– गृष्टिः आपीनभारोद्वहनप्रयत्नात् नरेन्द्रश्च वपुषः गुरुत्वात् उभौ तपोवनावृत्तिपथम् अलङ्घक्रतुः।

प्रश्न 22. का कम् उपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् पपौ?

उत्तर– वनिता (सुदक्षिणा) तं (दिलीपं) उपोषिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् पपौ।

प्रश्न 23. सुदक्षिणा दिलीपयोर्मध्ये नन्दिनी कथं विरराज?

उत्तर– सुदक्षिणा दिलीपयोर्मध्ये नन्दिनी दिनक्षपामध्यगता सन्ध्या इव विरराज।

प्रश्न 24. सुदक्षिणा साक्षातपात्रहस्ता किम् आनर्च?

उत्तर– सुदक्षिणा साक्षातपात्रहस्ता नन्दिनीमस्तकम् (शृङ्गान्तरम्) आनर्च।

प्रश्न 25. सुदक्षिणा नन्दिन्याः शृङ्गान्तरं किमिवानर्च?

उत्तर– सुदक्षिणा नन्दिन्याः शृङ्गान्तरम् अर्थसिद्धेः द्वारमिवानर्च।

प्रश्न 26. तौ (सुदक्षिणादिलीपौ) किमिति नन्दतुः?

उत्तर– वत्सोत्सुकाऽपि नन्दिनी स्तिमिता सती सपर्यां प्रत्यग्रहीदिति तौ (सुदक्षिणादिलीपौ) नन्दतुः।

प्रश्न 27. भक्तयोपपन्नेषु तद्विधानां प्रसादचिह्नानि कीदृशानि भवन्ति?

उत्तर– भक्तयोपपन्नेषु तद्विधानां प्रसादचिह्नानि पुरःफलानि भवन्ति।

प्रश्न 28. दिलीपः कीदृशीं नन्दिनीम् अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम् अनुसंविवेश?

उत्तर– दिलीपः अन्तिकन्यस्तबलिप्रदीपां नन्दिनीम् अन्वास्य क्रमेण सुप्ताम् अनुसंविवेश।

प्रश्न 29. व्रतं धारयतः तस्य (दिलीपस्य) कति दिनानि व्यतीयुः?

उत्तर– व्रतं धारयतः तस्य (दिलीपस्य) त्रिगुणानि सप्त दिनानि व्यतीयुः।

प्रश्न 30. दिलीपः कया सह प्रजार्थं व्रतमधारयत्?

उत्तर– दिलीपः महिष्या सह प्रजार्थं व्रतमधारयत्।

प्रश्न 31. अन्येद्युः कं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः गौरीगुरोः गह्वरम् आविवेश?

उत्तर– अन्येद्युः आत्मानुचरस्य (दिलीपस्य) भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः गौरीगुरोः गह्वरम् आविवेश।

प्रश्न 32. को जीवः वशिष्ठधेनुं प्रसह्य चकर्ष?

उत्तर– सिंहः वशिष्ठधेनुं प्रसह्य चकर्ष।

प्रश्न 33. आर्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्तां दृष्टिं किं निवर्तयामास?

उत्तर– आर्तसाधोः नृपस्य नगेन्द्रसक्तां दृष्टिं नन्दिन्याः आक्रन्दितम् निवर्तयामास।

प्रश्न 34. धनुर्धरोः दिलीपः पाटलायां गवि तस्थिवासं केसरिणं कथम्भूतं ददर्श?

उत्तर– धनुर्धरो दिलीपः पाटलायां गवि तस्थिवासं केसरिणं सानुमतो धातुमय्यामधित्यकायां प्रफुल्लं लोध्रद्रुममिव ददर्श।

प्रश्न 35. राजा निषङ्गात् शरं किमर्थम् उद्धर्तुम् ऐच्छत्?

उत्तर– राजा निषङ्गात् शरं मृगेन्द्रस्य वधाय उद्धर्तुम् ऐच्छत्।

प्रश्न 36. पर्वतगुहायां दिलीपस्य केन सह संवादः अभवत्?
उत्तर– पर्वतगुहायां दिलीपस्य सिंहेन सह संवादः अभवत्।
प्रश्न 37. सिंहः राजानं कया भाषया अवदत्?
उत्तर– सिंहः राजानं मनुष्य भाषया अवदत्।
प्रश्न 38. 'अलं महीपाल! तव श्रमेण' इति को निजगाद?
उत्तर– 'अलं महीपाल! तव श्रमेण' इति सिंहो निजगाद।
प्रश्न 39. मारुतस्य रंहः कस्मिन् न मूर्च्छति?
उत्तर– मारुतस्य रंहः शिलोच्चये न मूर्च्छति।
प्रश्न 40. सिंहेन स्व किं नाम उक्तम्?
उत्तर– सिंहेन स्वनाम कुम्भोदरं उक्तम्।
प्रश्न 41. कुम्भोदरः कोऽस्ति?
उत्तर– कुम्भोदरः अष्टमूर्तेः शिवस्य किङ्करोऽस्ति।
प्रश्न 42. वृषभध्वजेन कः पुत्रीकृतः आसीत्?
उत्तर– वृषभध्वजेन देवदारुद्रुमः पुत्रीकृतः आसीत्।
प्रश्न 43. 'स त्वं लज्जां विहाय निवर्त्तस्व' इति को कं जगाद?
उत्तर– 'स त्वं लज्जां विहाय निवर्त्तस्व' इति सिंहो दिलीपं जगाद।
प्रश्न 44. यद् रक्ष्यं शस्त्रेणाशक्यरक्ष्यं तत् शस्त्रभृतां किं न क्षिणोति?
उत्तर– यद् रक्ष्यं शस्त्रेणाशक्यरक्ष्यं तत् शस्त्रभृतां यशो न क्षिणोति।

➨ बहुविकल्पीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प चुनकर लिखिए–

1. नन्दिनी सेवा कृता?
(i) दिलीपेन (ii) अजेन
(iii) दशरथेन (iv) रामेण
उत्तर– (i) दिलीपेन।

2. कः राजा नन्दिनी सिषेवे?
(i) अजः (ii) दिलीपः
(iii) रघुः (iv) दशरथः
उत्तर– (ii) दिलीपः।

3. नन्दिनी कस्य गौः आसीत्?
(i) दिलीपस्य (ii) रघोः
(iii) वशिष्ठस्य (iv) दशरथस्य
उत्तर– (iii) वशिष्ठस्य।

4. नन्दिनी का आसीत्?
(i) धेनुः (ii) कामधेनुः
(iii) पशुः (iv) देवी
उत्तर– (ii) कामधेनुः।

5. (कामधेनुः) नन्दिनी कस्य ऋषे धेनुः आसीत्?
(i) विश्वामित्रस्य (ii) वशिष्ठस्य
(iii) दिलीपस्य (iv) कण्वस्य
उत्तर– (ii) वशिष्ठस्य

6. दिलीपस्य पत्न्याः नाम किं आसीत्?

(i) मालती (ii) वसुमती

(iii) सुदक्षिणा (iv) दमयन्ती **उत्तर–** (iii) सुदक्षिणा।

7. ''प्रयुक्तमप्यश्रमितो वृथा स्यात्'' इयं कस्योक्तिः?

(i) रघोः (ii) सिंहस्य

(iii) दिलीपस्य (iv) दशरथस्य **उत्तर–** (ii) सिंहस्य।

8. 'एकातपत्रं जगतः प्रभुत्वम्' इति कं प्रयुक्तम्?

(i) रघुम् (ii) दिलीपम्

(iii) वशिष्ठम् (iv) अजम् **उत्तर–** (ii) दिलीपम्।

9. सौरभेयीं कः जुगोप?

(i) दशरथः (ii) अजः

(iii) दिलीपः (iv) रघुः **उत्तर–** (iii) दिलीपः।

10. दिलीपः नन्दिनी सेवायाम् किं तत्परोऽभूत्?

(i) स्वान्तःसुखाय (ii) लोकहिताय

(iii) धनार्जनाय (iv) पुत्रलाभाय **उत्तर–** (iv) पुत्रलाभाय।

11. वशिष्ठ धेनोः आराधन तत्परः कः अभूत्?

(i) अजः (ii) रघुः

(iii) दशरथः (iv) दिलीपः **उत्तर–** (iv) दिलीपः।

12. दिलीपस्य दयिता का आसीत्?

(i) वसुमती (ii) सुदक्षिणा

(iii) सुलक्षणा (iv) सुभद्रा **उत्तर–** (ii) सुदक्षिणा।

13. वशिष्ठः कस्य गुरुः आसीत्?

(i) रामस्य (ii) दशरथस्य

(iii) लक्ष्मणस्य (iv) सुमन्त्रस्य **उत्तर–** (ii) दशरथस्य।

14. दिलीपः नन्दिन्या सेवायां तत्परोऽभूत्?

(i) स्वान्तःसुखाय (ii) लोकाराधनाय

(iii) सन्तानकामाय (iv) गुरोराज्ञानुपालनाय **उत्तर–** (iv) गुरोराज्ञानुपालनाय।

15. महाकवि कालिदास का 'रघुवंश क्या है?

(i) नाटक (ii) गद्यकाव्य

(iii) महाकाव्य (iv) खण्डकाव्य **उत्तर–** (iii) महाकाव्य।

16. उपमा प्रयोग के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं?

(i) भारवि (ii) श्री हर्ष

(iii) कालिदास (iv) दण्डी **उत्तर–** (iii) कालिदास।

17. महाकवि कालिदास की रचनाएँ हैं?

(i) छह (ii) तीन

(iii) सात (iv) पाँच **उत्तर–** (iii) सात।

18. दिनक्षपामध्यगता का इव धेनुः विरराज?

(i) रात्रिः (ii) सन्ध्या
(iii) प्रातः (iv) मध्याह्न। **उत्तर–** (ii) सन्ध्या।

19. किमर्थं दिलीपः नन्दिनीम् सेवत?

(i) राज्याय (ii) धनाय
(iii) स्वान्तःसुखाय (iv) सन्तानाय **उत्तर–** (iv) सन्तानाय।

20. द्वाविंशे दिवसे नन्दिनी कुत्र प्रविष्टा?

(i) गृहे (ii) गुहायाम्
(iii) प्रासादे (iv) गोशालायाम् **उत्तर–** (ii) गुहायाम्।

21. नन्दिनी का आसीत्?

(i) धेनुः (ii) अजा
(iii) महिषी (iv) सेविका **उत्तर–** (i) धेनुः।

22. दिलीपः कदा ऋषेः धेनुं वनाय मुमोच?

(i) रात्रिकाले (ii) सायंकाले
(iii) मध्याह्नकाले (iv) प्रभाते **उत्तर–** (iv) प्रभाते।

23. दिलीपस्य परीक्षार्थं नन्दिनी कुत्र प्रविष्टा?

(i) गृहे (ii) आश्रमे
(iii) गिरिगुहायाम् (iv) उपवने **उत्तर–** (iii) गिरिगुहायाम्।

24. दिलीपः कस्य आश्रमम् अगच्छत्?

(i) कण्वस्य (ii) विश्वामित्रस्य
(iii) वशिष्ठस्य (iv) अगस्त्यस्य **उत्तर–** (iii) वशिष्ठस्य।

25. दिलीपः कस्याः समाराधनतत्परोऽभूत्?गज

(i) सुदक्षिणायाः (ii) गुरुपत्न्याः
(iii) नन्दिन्याः (iv) पार्वत्याः **उत्तर–** (iii) नन्दिन्याः।

●●